चीफ की दावत

भीष्म साहनी

कहानी

आज मिस्टर शामनाथ के घर चीफ की दावत थी। शामनाथ और उनकी धर्मपत्नी को पसीना पोंछने की फुर्सत न थी। पत्नी ड्रेसिंग गाउन पहने, उलझे हुए बालों का जूड़ा बनाए मुँह पर फैली हुई सुर्खी और पाउडर को मले और मिस्टर शामनाथ सिगरेट पर सिगरेट फूँकते हुए चीज़ों की फेहरिस्त हाथ में थामे, एक कमरे से दूसरे कमरे में आ-जा रहे थे।

आखिर पाँच बजते-बजते तैयारी मुकम्मल होने लगी। कुर्सियाँ, मेज़, तिपाइयाँ, नैपकिन, फूल - सब बरामदे में पहुँच गए। ड्रिंक का इन्तज़ाम बैठक में कर दिया गया। अब घर का फालतू सामान अलमारियों के पीछे और पलंगों के नीचे छिपाया जाने लगा। तभी शामनाथ के सामने सहसा एक अड़चन खड़ी हो गई, माँ का क्या होगा?

इस बात की ओर न उनका और न उनकी कुशल गृहिणी का ध्यान गया था। मिस्टर शामनाथ, श्रीमती की ओर घूम कर अँग्रेज़ी में बोले, "माँ का क्या होगा?"

श्रीमती काम करते-करते ठहर गईं, और थोड़ी देर तक सोचने के बाद बोलीं, "इन्हें पिछवाड़े इनकी सहेली के घर भेज दो, रात-भर बेशक वहीं रहें। कल आ जाएँ।"

शामनाथ सिगरेट मुँह में रखे, सिकुड़ी आँखों से श्रीमती के चेहरे की ओर देखते हुए पल-भर सोचते रहे, फिर सिर हिला कर बोले, "नहीं, मैं नहीं चाहता कि उस बुढ़िया का आना-जाना यहाँ फिर से शुरू हो। पहले ही बड़ी मुश्किल से बन्द किया था। माँ से कहें कि जल्दी ही खाना खा के शाम को ही अपनी कोठरी में चली जाएँ। मेहमान कहीं आठ बजे आएँगे, इससे पहले ही अपने काम से निबट लें।"

सुझाव ठीक था। दोनों को पसन्द आया। मगर फिर सहसा श्रीमती बोल उठीं, "जो वह सो गईं और नींद में खर्राटे लेने लगीं, तो? साथ ही तो बरामदा है, जहाँ लोग खाना खाएँगे।"

"तो इन्हें कह देंगे कि अन्दर से दरवाज़ा बन्द कर लें। मैं बाहर से ताला लगा दूँगा। या माँ को कह देता हूँ कि अन्दर जा कर सोएँ नहीं, बैठी रहें, और क्या?"

"और जो सो गईं, तो? डिनर का क्या मालूम कब तक चले। ग्यारह-ग्यारह बजे तक तो तुम ड्रिंक ही करते रहते हो।"

शामनाथ कुछ खीज उठे, हाथ झटकते हुए बोले, "अच्छी-भली यह भाई के पास जा रही थीं। तुमने यूँ ही खुद अच्छा बनने के लिए बीच में टाँग अड़ा दी!"

"वाह! तुम माँ और बेटे की बातों में मैं क्यों बुरी बनूँ? तुम जानो और वह जानें।"

मिस्टर शामनाथ चुप रहे। यह मौका बहस का न था, समस्या का हल ढूँढ़ने का था। उन्होंने घूम कर माँ की कोठरी की ओर देखा। कोठरी का दरवाज़ा बरामदे में खुलता था। बरामदे की ओर देखते हुए झट से बोले, "मैंने सोच लिया है" और उन्हीं कदमों माँ की कोठरी के बाहर जा खड़े हुए। माँ दीवार के साथ एक चौकी पर बैठी, दुपट्टे में मुँह-सिर लपेटे, माला जप रही थीं। सुबह से तैयारी होती देखते हुए माँ का भी दिल धड़क रहा था। बेटे के दफ्तर का बड़ा साहब घर पर आ रहा है, सारा काम सुभीते से चल जाए।

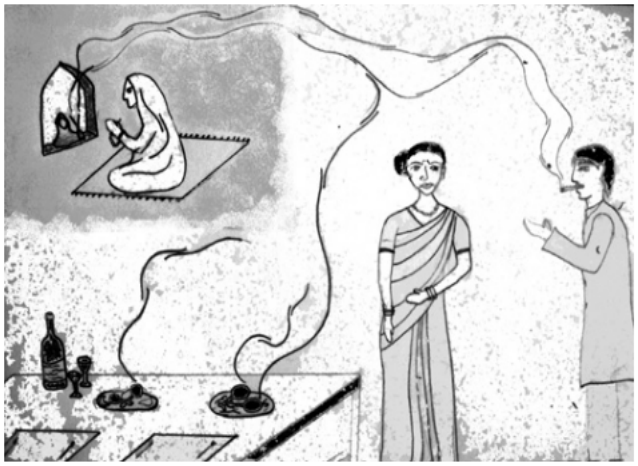

"माँ, आज तुम खाना जल्दी खा लेना। मेहमान लोग साढ़े सात बजे आ जाएँगे।"

माँ ने धीरे-से मुँह पर से दुपट्टा हटाया और बेटे को देखते हुए कहा, "आज मुझे खाना नहीं खाना है, बेटा, तुम जो जानते हो, मांस-मछली बने तो मैं कुछ नहीं खाती।"

"जैसे भी हो, अपने काम से जल्दी निबट लेना।"

"अच्छा, बेटा।"

"और माँ, हम लोग पहले बैठक में बैठेंगे। उतनी देर तुम यहाँ बरामदे में बैठना। फिर जब हम यहाँ आ जाएँ, तो तुम गुसलखाने के रास्ते बैठक में चली जाना।"

माँ अवाक बेटे का चेहरा देखने लगीं। फिर धीरे-से बोलीं, "अच्छा बेटा।"

"और माँ आज जल्दी सो नहीं जाना। तुम्हारे खर्राटों की आवाज़ दूर तक जाती है।"

माँ लज्जित-सी आवाज़ में बोलीं, "क्या करूँ, बेटा, मेरे बस की बात नहीं है। जब से बीमारी से उठी हूँ, नाक से साँस नहीं ले सकती।"

मिस्टर शामनाथ ने इन्तज़ाम तो कर दिया, फिर भी उनकी उधेड़-बुन खत्म नहीं हुई। जो चीफ अचानक उधर आ निकला, तो? आठ-दस मेहमान होंगे, देसी अफसर, उनकी स्त्रियाँ होंगी, कोई भी गुसलखाने की तरफ जा सकता है। क्षोभ और क्रोध में वह झुँझलाने लगे। एक कुर्सी को उठा कर बरामदे में कोठरी के बाहर रखते हुए बोले, "आओ माँ, इस पर ज़रा बैठो तो।"

माँ माला सँभालती, पल्ला ठीक करती उठीं, और धीरे-से कुर्सी पर आ कर बैठ गईं।

"यूँ नहीं, माँ, टाँगें ऊपर चढ़ा कर नहीं बैठते। यह खाट नहीं है।"

माँ ने टाँगें नीचे उतार लीं।

“और खुदा के वास्ते नंगे पाँव नहीं घूमना। न ही वह खड़ाऊँ पहन कर सामने आना। किसी दिन तुम्हारी यह खड़ाऊँ उठा कर मैं बाहर फेंक दूँगा।”
माँ चुप रहीं।
“कपड़े कौन-से पहनोगी, माँ?”
“जो है, वही पहनूँगी, बेटा! जो कहो, पहन लूँ।”
मिस्टर शामनाथ सिगरेट मुँह में रखे, फिर अधखुली आँखों से माँ की ओर देखने लगे, और माँ के कपड़ों की सोचने लगे। शामनाथ हर बात में तरतीब चाहते थे। घर का सब संचालन उनके अपने हाथ में था। खूँटियाँ कमरों में कहाँ लगाई जाएँ, बिस्तर कहाँ पर बिछें, किस रंग के पर्दे लगाए जाएँ, श्रीमती कौन-सी साड़ी पहनें, मेज़ किस साइज़ की हो... शामनाथ को चिन्ता थी कि अगर चीफ का साक्षात माँ से हो गया, तो कहीं लज्जित नहीं होना पड़े। माँ को सिर से पाँव तक देखते हुए बोले, “तुम सफेद कमीज़ और सफेद सलवार पहन लो, माँ। पहन के आओ तो, ज़रा देखूँ।”
माँ धीरे-से उठीं और अपनी कोठरी में कपड़े पहनने चली गईं।

यह माँ का झमेला ही रहेगा, उन्होंने फिर अँग्रेज़ी में अपनी स्त्री से कहा, “कोई ढंग की बात हो, तो भी कोई कहे। अगर कहीं कोई उल्टी-सीधी बात हो गई, चीफ को बुरा लगा, तो सारा मज़ा जाता रहेगा।”
माँ सफेद कमीज़ और सफेद सलवार पहन कर बाहर निकलीं। छोटा-सा कद, सफेद कपड़ों में लिपटा, छोटा-सा सूखा हुआ शरीर, धुँधली आँखें, केवल सिर के आधे झड़े हुए बाल पल्ले की ओट में छिप पाए थे। पहले से कुछ कम कुरूप नज़र आ रही थीं।
“चलो, ठीक है। कोई चूड़ियाँ-वूड़ियाँ हों, तो वह भी पहन लो। कोई हर्ज़ नहीं।”
“चूड़ियाँ कहाँ से लाऊँ, बेटा? तुम तो जानते हो, सब ज़ेवर तुम्हारी पढ़ाई में बिक गए।”
यह वाक्य शामनाथ को तीर की तरह लगा। तिनक कर बोले, “यह कौन-सा राग छेड़ दिया, माँ! सीधा कह दो, नहीं हैं ज़ेवर, बस! इससे पढ़ाई-वढ़ाई का क्या ताल्लुक है! जो ज़ेवर बिका, तो कुछ बन कर ही आया हूँ, निरा लँडूरा तो नहीं लौट आया। जितना दिया था, उससे दुगना ले लेना।”

"मेरी जीभ जल जाए, बेटा, तुमसे ज़ेवर लूँगी? मेरे मुँह से यूँ ही निकल गया। जो होते, तो लाख बार पहनती!"

साढ़े पाँच बज चुके थे। अभी मिस्टर शामनाथ को खुद भी नहा-धोकर तैयार होना था। श्रीमती कब की अपने कमरे में जा चुकी थीं। शामनाथ जाते हुए एक बार फिर माँ को हिदायत करते गए, "माँ, रोज़ की तरह गुमसुम बन के नहीं बैठी रहना। अगर साहब इधर आ निकलें और कोई बात पूछें, तो ठीक तरह से बात का जवाब देना।"

"मैं न पढ़ी, न लिखी, बेटा, मैं क्या बात करूँगी? तुम कह देना, माँ अनपढ़ है, कुछ जानती-समझती नहीं। वह नहीं पूछेगा।"

सात बजते-बजते माँ का दिल धक-धक करने लगा। अगर चीफ सामने आ गया और उसने कुछ पूछा, तो वह क्या जवाब देंगी। अँग्रेज़ को तो दूर से ही देख कर घबरा उठती थीं, यह तो अमरीकी है। न मालूम क्या पूछे। मैं क्या कहूँगी। माँ का जी चाहा कि चुपचाप पिछवाड़े विधवा सहेली के घर चली जाएँ। मगर बेटे के हुक्म को कैसे टाल सकती थीं। चुपचाप कुर्सी पर से टाँगें लटकाए वहीं बैठी रहीं।

एक कामयाब पार्टी वह है, जिसमें ड्रिंक कामयाबी से चल जाएँ। शामनाथ की पार्टी सफलता के शिखर चूमने लगी। वार्तालाप उसी रौ में बह रहा था, जिस रौ में गिलास भरे जा रहे थे। कहीं कोई रुकावट न थी, कोई अड़चन न थी। साहब को व्हिस्की पसन्द आई थी। मेमसाहब को पर्दे पसन्द आए थे, सोफा-कवर का डिज़ाइन पसन्द आया था, कमरे की सजावट पसन्द आई थी। इससे बढ़ कर क्या चाहिए। साहब तो ड्रिंक के दूसरे दौर में ही चुटकुले और कहानियाँ कहने लग गए थे। दफ्तर में जितना रोब रखते थे, यहाँ पर उतने ही दोस्त-परवर हो रहे थे और उनकी स्त्री काला गाउन पहने, गले में सफेद मोतियों का हार, सेंट और पाउडर की महक से ओत-प्रोत, कमरे में बैठी सभी देसी स्त्रियों की आराधना का केन्द्र बनी हुई थीं। बात-बात पर हँसतीं, बात-बात पर सिर हिलातीं और शामनाथ की स्त्री से तो ऐसे बातें कर रही थीं, जैसे उनकी पुरानी सहेली हों।

और इसी रौ में पीते-पिलाते साढ़े दस बज गए। वक्त गुज़रते पता ही न चला।

आखिर सब लोग अपने-अपने गिलासों में से आखिरी घूँट पीकर खाना खाने के लिए उठे और बैठक से बाहर निकले। आगे-आगे शामनाथ रास्ता दिखाते हुए, पीछे चीफ और दूसरे मेहमान।

बरामदे में पहुँचते ही शामनाथ सहसा ठिठक गए। जो दृश्य उन्होंने देखा, उससे उनकी टाँगें लड़खड़ा गईं, और क्षण-भर में सारा नशा हिरन होने लगा। बरामदे में ऐन कोठरी के बाहर माँ अपनी कुर्सी पर ज्यों-की-त्यों बैठी थीं। मगर दोनों पाँव कुर्सी की सीट पर रखे हुए, और सिर दाएँ से बाएँ और बाएँ से दाएँ झूल रहा था और मुँह में से लगातार गहरे खर्राटों की आवाज़ें आ रही थीं। जब सिर कुछ देर के लिए टेढ़ा होकर एक तरफ को थम जाता, तो खर्राटे और भी गहरे हो उठते। और फिर जब झटके-से नींद टूटती, तो सिर फिर दाएँ से बाएँ झूलने लगता। पल्ला सिर पर से खिसक आया था, और माँ के झरे हुए बाल, आधे गंजे सिर पर अस्त-व्यस्त बिखर रहे थे।

देखते ही शामनाथ क्रुद्ध हो उठे। जी चाहा कि माँ को धक्का देकर उठा दें, और उन्हें कोठरी में धकेल दें, मगर ऐसा करना सम्भव न था, चीफ और बाकी मेहमान पास खड़े थे।

माँ को देखते ही देसी अफसरों की कुछ स्त्रियाँ हँस दीं कि इतने में चीफ ने धीरे-से कहा, "पुअर डियर!"

माँ हड़बड़ा कर उठ बैठीं। सामने खड़े इतने लोगों को देख कर ऐसी घबराईं कि कुछ कहते न बना। झट से पल्ला सिर पर रखती हुई खड़ी हो गईं और ज़मीन को देखने लगीं। उनके पाँव लड़खड़ाने लगे और हाथों की उँगलियाँ थर-थर काँपने लगीं।

"माँ, तुम जाके सो जाओ, तुम क्यों इतनी देर तक जाग रही थीं?" और खिसियाई हुई नज़रों से शामनाथ चीफ के मुँह की ओर देखने लगे।

चीफ के चेहरे पर मुस्कराहट थी। वह वहीं खड़े-खड़े बोले, "नमस्ते!"

माँ ने झिझकते हुए, अपने में सिमटते हुए दोनों हाथ जोड़े, मगर एक हाथ दुपट्टे के अन्दर माला को पकड़े हुए था, दूसरा बाहर, ठीक तरह से नमस्ते भी न कर पाईं। शामनाथ इस पर भी खिन्न हो उठे।

इतने में चीफ ने अपना दायाँ हाथ, हाथ मिलाने के लिए माँ के आगे किया। माँ और भी घबरा उठीं।

"माँ, हाथ मिलाओ।"

पर हाथ कैसे मिलातीं? दाएँ हाथ में तो माला थी। घबराहट में माँ ने बायाँ हाथ ही साहब के दाएँ हाथ में रख दिया। शामनाथ दिल ही दिल में जल उठे। देसी अफसरों की स्त्रियाँ खिलखिला कर हँस पड़ीं।

"यूँ नहीं, माँ! तुम तो जानती हो, दायाँ हाथ मिलाया जाता है। दायाँ हाथ मिलाओ।"

मगर तब तक चीफ माँ का बायाँ हाथ ही बार-बार हिला कर कह रहे थे, "हाउ डू यू डू?"

"कहो माँ, मैं ठीक हूँ, खैरियत से हूँ।"

माँ कुछ बड़बड़ाईं।

"माँ कहती हैं, मैं ठीक हूँ। कहो माँ, हाउ डू यू डू।"

माँ धीरे-से सकुचाते हुए बोलीं, "हौ डू डू ..।"

एक बार फिर कहकहा उठा।

वातावरण हल्का होने लगा। साहब ने स्थिति सँभाल ली थी। लोग हँसने-चहकने लगे थे। शामनाथ के मन का क्षोभ भी कुछ-कुछ कम होने लगा था।

साहब अपने हाथ में माँ का हाथ अब भी पकड़े हुए थे, और माँ सिकुड़ी जा रही थीं। साहब के मुँह से शराब की बू आ रही थी।

शामनाथ अँग्रेज़ी में बोले, "मेरी माँ गाँव की रहने वाली हैं। उमर भर गाँव में रही हैं। इसलिए आपसे लजाती हैं।"

साहब इस पर खुश नज़र आए। बोले, "सच? मुझे गाँव के लोग बहुत पसन्द हैं, तब तो तुम्हारी माँ गाँव के गीत और नाच भी जानती होंगी?" चीफ खुशी से सिर हिलाते हुए माँ को टकटकी बाँधे देखने लगे।

"माँ, साहब कहते हैं, कोई गाना सुनाओ। कोई पुराना गीत तुम्हें तो कितने ही याद होंगे।"

माँ धीरे-से बोलीं, "मैं क्या गाऊँगी बेटा। मैंने कब गाया है?"

"वाह, माँ! मेहमान का कहा भी कोई टालता है? साहब ने इतना रीझ से कहा है, नहीं गाओगी, तो साहब बुरा मानेंगे।"

"मैं क्या गाऊँ, बेटा? मुझे क्या आता है?"

"वाह! कोई बढ़िया टप्पे सुना दो। दो पत्तर अनाराँ दे ...।"

देसी अफसर और उनकी स्त्रियों ने इस सुझाव पर तालियाँ पीटीं। माँ कभी दीन दृष्टि से बेटे के चेहरे को देखतीं, कभी पास खड़ी बहू के चेहरे को।

इतने में बेटे ने गम्भीर आदेश-भरे लिहाज़ में कहा, "माँ!"

इसके बाद 'हाँ' या 'ना' सवाल ही न उठता था। माँ बैठ गईं और क्षीण, दुर्बल, लरजती आवाज़ में एक पुराना विवाह का गीत गाने लगीं -

हरिया नी माए, हरिया नी भैणे

हरिया ते भागी भरिया है!

देसी स्त्रियाँ खिलखिला के हँस उठीं। तीन पंक्तियाँ गा के माँ चुप हो गईं।

बरामदा तालियों से गूँज उठा। साहब तालियाँ पीटना बन्द ही न करते थे। शामनाथ की खीज प्रसन्नता और गर्व में बदल उठी थी। माँ ने पार्टी में नया रंग भर दिया था।

तालियाँ थमने पर साहब बोले, "पंजाब के गाँवों की दस्तकारी क्या है?"

शामनाथ खुशी में झूम रहे थे। बोले, "ओ, बहुत कुछ। साहब! मैं आपको एक सेट उन चीज़ों का भेंट करूँगा। आप उन्हें देख कर खुश होंगे।"

मगर साहब ने सिर हिला कर अँग्रेज़ी में फिर पूछा, "नहीं, मैं दुकानों की चीज़ नहीं माँगता। पंजाबियों के घरों में क्या बनता है, औरतें खुद क्या बनाती हैं?"

शामनाथ कुछ सोचते हुए बोले, "लड़कियाँ गुड़ियाँ बनाती हैं, और फुलकारियाँ बनाती हैं।"

"फुलकारी क्या?"

शामनाथ फुलकारी का मतलब समझाने की असफल चेष्टा करने के बाद माँ को बोले, "क्यों, माँ, कोई पुरानी फुलकारी घर में है?"

माँ चुपचाप अन्दर गईं और अपनी पुरानी फुलकारी उठा लाईं।

साहब बड़ी रुचि से फुलकारी देखने लगे। पुरानी फुलकारी थी, जगह-जगह से उसके तागे टूट रहे थे और कपड़ा फटने लगा था। साहब की रुचि को देखकर शामनाथ बोले, "यह फटी हुई है, साहब, मैं आपको नई बनवा दूँगा। माँ बना देंगी। क्यों माँ, साहब को फुलकारी बहुत पसन्द हैं, इन्हें ऐसी ही एक फुलकारी बना दोगी न?"

माँ चुप रहीं। फिर डरते-डरते धीरे-से बोलीं, "अब मेरी नज़र कहाँ है, बेटा! बूढ़ी आँखें क्या देखेंगी?"

मगर माँ का वाक्य बीच में ही तोड़ते हुए शामनाथ साहब को बोले, "वह ज़रूर बना देंगी। आप उसे देख कर खुश होंगे।"

साहब ने सिर हिलाया, धन्यवाद किया और हल्के-हल्के झूमते हुए खाने की मेज़ की ओर बढ़ गए। बाकी मेहमान भी उनके पीछे-पीछे हो लिए।

जब मेहमान बैठ गए और माँ पर से सबकी आँखें हट गईं, तो माँ धीरे-से कुर्सी पर से उठीं, और सबसे नज़रें बचाती हुई अपनी कोठरी में चली गईं।

मगर कोठरी में बैठने की देर थी कि आँखों में छल-छल आँसू बहने लगे। वह दुपट्टे से बार-बार उन्हें पोंछतीं, पर वह बार-बार उमड़ आते, जैसे बरसों का बाँध तोड़ कर उमड़ आए हों। माँ ने बहुतेरा दिल को समझाया, हाथ जोड़े, भगवान का नाम लिया, बेटे के चिरायु होने की प्रार्थना की, बार-बार आँखें बन्द कीं, मगर आँसू बरसात के पानी की तरह जैसे थमने में ही न आते थे।

आधी रात का वक्त होगा। मेहमान खाना खा कर एक-एक करके जा चुके थे। माँ दीवार से सट कर बैठी आँखें फाड़े दीवार को देखे जा रही थीं। घर के वातावरण में तनाव ढीला पड़ चुका था। मुहल्ले की निस्तब्धता शामनाथ के घर भी छा चुकी थी, केवल रसोई में प्लेटों के खनकने की आवाज़ आ रही थी। तभी सहसा माँ की कोठरी का दरवाज़ा ज़ोर से खटकने लगा।

"माँ, दरवाज़ा खोलो।"

माँ का दिल बैठ गया। हड़बड़ा कर उठ बैठीं। क्या मुझसे फिर कोई भूल हो गई? माँ कितनी देर से अपने आपको कोस रही थीं कि क्यों उन्हें नींद आ गई, क्यों वह ऊँघने लगीं। क्या बेटे ने अभी तक क्षमा नहीं किया? माँ उठीं और काँपते हाथों से दरवाज़ा खोल दिया।

दरवाज़े खुलते ही शामनाथ झूमते हुए आगे बढ़ आए और माँ को आलिंगन में भर लिया।

"ओ अम्मी! तुमने तो आज रंग ला दिया! ...साहब तुमसे इतना खुश हुआ कि क्या कहूँ। ओ अम्मी! अम्मी!"

माँ की छोटी-सी काया सिमट कर बेटे के आलिंगन में छिप गई। माँ की आँखों में फिर आँसू आ गए। उन्हें पोंछती हुई धीरे-से बोलीं, "बेटा, तुम मुझे हरिद्वार भेज दो। मैं कब से कह रही हूँ।"

शामनाथ का झूमना सहसा बन्द हो गया और उनकी पेशानी पर फिर तनाव के बल पड़ने लगे। उनकी बाँहें माँ के शरीर पर से हट आईं।

"क्या कहा, माँ? यह कौन-सा राग तुमने फिर छेड़ दिया?"

शामनाथ का क्रोध बढ़ने लगा था, बोलते गए, "तुम मुझे बदनाम करना चाहती हो, ताकि दुनिया कहे कि बेटा माँ को अपने पास नहीं रख सकता।"

"नहीं बेटा, अब तुम अपनी बहू के साथ जैसा मन चाहे रहो। मैंने अपना खा-पहन लिया। अब यहाँ क्या करूँगी? जो थोड़े दिन ज़िन्दगानी के बाकी हैं, भगवान का नाम लूँगी। तुम मुझे हरिद्वार भेज दो!"

"तुम चली जाओगी, तो फुलकारी कौन बनाएगा? साहब से तुम्हारे सामने ही फुलकारी देने का इकरार किया है।"

"मेरी आँखें अब नहीं हैं, बेटा, जो फुलकारी बना सकूँ। तुम कहीं और से बनवा लो। बनी-बनाई ले लो।"

"माँ, तुम मुझे धोखा देके यूँ चली जाओगी? मेरा बनता काम बिगाड़ोगी? जानती नहीं, साहब खुश होगा, तो मुझे तरक्की मिलेगी!"

माँ चुप हो गईं। फिर बेटे के मुँह की ओर देखती हुई बोलीं, "क्या तेरी तरक्की होगी? क्या साहब तेरी तरक्की कर देगा? क्या उसने कुछ कहा है?"

"कहा नहीं, मगर देखती नहीं, कितना खुश गया है। कहता था, जब तेरी माँ फुलकारी बनाना शु डिग्री करेंगी, तो मैं देखने आऊँगा कि कैसे बनाती हैं। जो साहब खुश हो गया, तो मुझे इससे बड़ी नौकरी भी मिल सकती है, मैं बड़ा अफसर बन सकता हूँ।"

माँ के चेहरे का रंग बदलने लगा, धीरे-धीरे उनका झुर्रियों-भरा मुँह खिलने लगा, आँखों में हल्की-हल्की चमक आने लगी।

"तो तेरी तरक्की होगी बेटा?"

"तरक्की यूँ ही हो जाएगी? साहब को खुश रखूँगा, तो कुछ करेगा, वरना उसकी खिदमत करने वाले और भी हैं।"

"तो मैं बना दूँगी, बेटा, जैसे बन पड़ेगा, बना दूँगी।"

और माँ दिल-ही-दिल में फिर बेटे के उज्ज्वल भविष्य की कामनाएँ करने लगीं और मिस्टर शामनाथ, "अब सो जाओ, माँ," कहते हुए, तनिक लड़खड़ाते हुए अपने कमरे की ओर घूम गए।

चीफ की दावत

भीष्म साहनी

कहानी

आज मिस्टर शामनाथ के घर चीफ की दावत थी। शामनाथ और उनकी धर्मपत्नी को पसीना पोंछने की फुर्सत न थी। पत्नी ड्रेसिंग गाउन पहने, उलझे हुए बालों का जूड़ा बनाए मुँह पर फैली हुई सुर्खी और पाउडर को मले और मिस्टर शामनाथ सिगरेट पर सिगरेट फूँकते हुए चीज़ों की फेहरिस्त हाथ में थामे, एक कमरे से दूसरे कमरे में आ-जा रहे थे।

आखिर पाँच बजते-बजते तैयारी मुकम्मल होने लगी। कुर्सियाँ, मेज़, तिपाइयाँ, नैपकिन, फूल - सब बरामदे में पहुँच गए। ड्रिंक का इन्तज़ाम बैठक में कर दिया गया। अब घर का फालतू सामान अलमारियों के पीछे और पलंगों के नीचे छिपाया जाने लगा। तभी शामनाथ के सामने सहसा एक अड़चन खड़ी हो गई, माँ का क्या होगा?

इस बात की ओर न उनका और न उनकी कुशल गृहिणी का ध्यान गया था। मिस्टर शामनाथ, श्रीमती की ओर घूम कर अँग्रेज़ी में बोले, "माँ का क्या होगा?"

श्रीमती काम करते-करते ठहर गईं, और थोड़ी देर तक सोचने के बाद बोलीं, "इन्हें पिछवाड़े इनकी सहेली के घर भेज दो, रात-भर बेशक वहीं रहें। कल आ जाएँ।"

शामनाथ सिगरेट मुँह में रखे, सिकुड़ी आँखों से श्रीमती के चेहरे की ओर देखते हुए पल-भर सोचते रहे, फिर सिर हिला कर बोले, "नहीं, मैं नहीं चाहता कि उस बुढ़िया का आना-जाना यहाँ फिर से शुरू हो। पहले ही बड़ी मुश्किल से बन्द किया था। माँ से कहें कि जल्दी ही खाना खा के शाम को ही अपनी कोठरी में चली जाएँ। मेहमान कहीं आठ बजे आएँगे, इससे पहले ही अपने काम से निबट लें।"

सुझाव ठीक था। दोनों को पसन्द आया। मगर फिर सहसा श्रीमती बोल उठीं, "जो वह सो गईं और नींद में खर्राटे लेने लगीं, तो? साथ ही तो बरामदा है, जहाँ लोग खाना खाएँगे।"

"तो इन्हें कह देंगे कि अन्दर से दरवाज़ा बन्द कर लें। मैं बाहर से ताला लगा दूँगा। या माँ को कह देता हूँ कि अन्दर जा कर सोएँ नहीं, बैठी रहें, और क्या?"

"और जो सो गईं, तो? डिनर का क्या मालूम कब तक चले। ग्यारह-ग्यारह बजे तक तो तुम ड्रिंक ही करते रहते हो।"

शामनाथ कुछ खीज उठे, हाथ झटकते हुए बोले, "अच्छी-भली यह भाई के पास जा रही थीं। तुमने यूँ ही खुद अच्छा बनने के लिए बीच में टाँग अड़ा दी!"

"वाह! तुम माँ और बेटे की बातों में मैं क्यों बुरी बनूँ? तुम जानो और वह जानें।"

मिस्टर शामनाथ चुप रहे। यह मौका बहस का न था, समस्या का हल ढूँढ़ने का था। उन्होंने घूम कर माँ की कोठरी की ओर देखा। कोठरी का दरवाज़ा बरामदे में खुलता था। बरामदे की ओर देखते हुए झट से बोले, "मैंने सोच लिया है" और उन्हीं कदमों माँ की कोठरी के बाहर जा खड़े हुए। माँ दीवार के साथ एक चौकी पर बैठी, दुपट्टे में मुँह-सिर लपेटे, माला जप रही थीं। सुबह से तैयारी होती देखते हुए माँ का भी दिल धड़क रहा था। बेटे के दफ्तर का बड़ा साहब घर पर आ रहा है, सारा काम सुभीते से चल जाए।

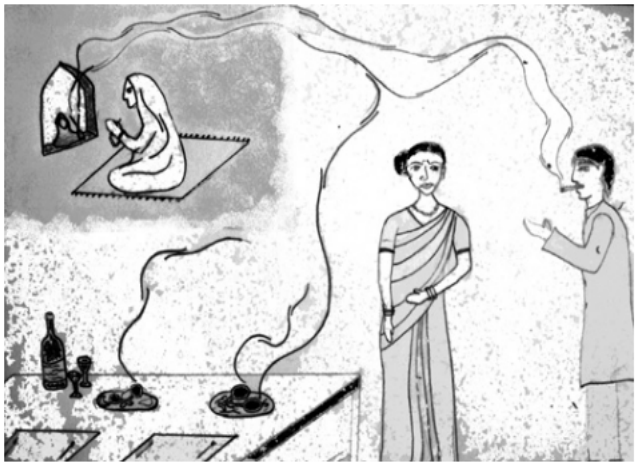

"माँ, आज तुम खाना जल्दी खा लेना। मेहमान लोग साढ़े सात बजे आ जाएँगे।"

माँ ने धीरे-से मुँह पर से दुपट्टा हटाया और बेटे को देखते हुए कहा, "आज मुझे खाना नहीं खाना है, बेटा, तुम जो जानते हो, मांस-मछली बने तो मैं कुछ नहीं खाती।"

"जैसे भी हो, अपने काम से जल्दी निबट लेना।"

"अच्छा, बेटा।"

"और माँ, हम लोग पहले बैठक में बैठेंगे। उतनी देर तुम यहाँ बरामदे में बैठना। फिर जब हम यहाँ आ जाएँ, तो तुम गुसलखाने के रास्ते बैठक में चली जाना।"

माँ अवाक बेटे का चेहरा देखने लगीं। फिर धीरे-से बोलीं, "अच्छा बेटा।"

"और माँ आज जल्दी सो नहीं जाना। तुम्हारे खर्राटों की आवाज़ दूर तक जाती है।"

माँ लज्जित-सी आवाज़ में बोलीं, "क्या करूँ, बेटा, मेरे बस की बात नहीं है। जब से बीमारी से उठी हूँ, नाक से साँस नहीं ले सकती।"

मिस्टर शामनाथ ने इन्तज़ाम तो कर दिया, फिर भी उनकी उधेड़-बुन खत्म नहीं हुई। जो चीफ अचानक उधर आ निकला, तो? आठ-दस मेहमान होंगे, देसी अफसर, उनकी स्त्रियाँ होंगी, कोई भी गुसलखाने की तरफ जा सकता है। क्षोभ और क्रोध में वह झुँझलाने लगे। एक कुर्सी को उठा कर बरामदे में कोठरी के बाहर रखते हुए बोले, "आओ माँ, इस पर ज़रा बैठो तो।"

माँ माला सँभालती, पल्ला ठीक करती उठीं, और धीरे-से कुर्सी पर आ कर बैठ गईं।

"यूँ नहीं, माँ, टाँगें ऊपर चढ़ा कर नहीं बैठते। यह खाट नहीं है।"

माँ ने टाँगें नीचे उतार लीं।

“और खुदा के वास्ते नंगे पाँव नहीं घूमना। न ही वह खड़ाऊँ पहन कर सामने आना। किसी दिन तुम्हारी यह खड़ाऊँ उठा कर मैं बाहर फेंक दूँगा।”
माँ चुप रहीं।
“कपड़े कौन-से पहनोगी, माँ?”
“जो है, वही पहनूँगी, बेटा! जो कहो, पहन लूँ।”
मिस्टर शामनाथ सिगरेट मुँह में रखे, फिर अधखुली आँखों से माँ की ओर देखने लगे, और माँ के कपड़ों की सोचने लगे। शामनाथ हर बात में तरतीब चाहते थे। घर का सब संचालन उनके अपने हाथ में था। खूँटियाँ कमरों में कहाँ लगाई जाएँ, बिस्तर कहाँ पर बिछें, किस रंग के पर्दे लगाए जाएँ, श्रीमती कौन-सी साड़ी पहनें, मेज़ किस साइज़ की हो... शामनाथ को चिन्ता थी कि अगर चीफ का साक्षात माँ से हो गया, तो कहीं लज्जित नहीं होना पड़े। माँ को सिर से पाँव तक देखते हुए बोले, “तुम सफेद कमीज़ और सफेद सलवार पहन लो, माँ। पहन के आओ तो, ज़रा देखूँ।”
माँ धीरे-से उठीं और अपनी कोठरी में कपड़े पहनने चली गईं।

यह माँ का झमेला ही रहेगा, उन्होंने फिर अँग्रेज़ी में अपनी स्त्री से कहा, “कोई ढंग की बात हो, तो भी कोई कहे। अगर कहीं कोई उल्टी-सीधी बात हो गई, चीफ को बुरा लगा, तो सारा मज़ा जाता रहेगा।”
माँ सफेद कमीज़ और सफेद सलवार पहन कर बाहर निकलीं। छोटा-सा कद, सफेद कपड़ों में लिपटा, छोटा-सा सूखा हुआ शरीर, धुँधली आँखें, केवल सिर के आधे झड़े हुए बाल पल्ले की ओट में छिप पाए थे। पहले से कुछ कम कुरूप नज़र आ रही थीं।
“चलो, ठीक है। कोई चूड़ियाँ-वूड़ियाँ हों, तो वह भी पहन लो। कोई हर्ज़ नहीं।”
“चूड़ियाँ कहाँ से लाऊँ, बेटा? तुम तो जानते हो, सब ज़ेवर तुम्हारी पढ़ाई में बिक गए।”
यह वाक्य शामनाथ को तीर की तरह लगा। तिनक कर बोले, “यह कौन-सा राग छेड़ दिया, माँ! सीधा कह दो, नहीं हैं ज़ेवर, बस! इससे पढ़ाई-वढ़ाई का क्या ताल्लुक है! जो ज़ेवर बिका, तो कुछ बन कर ही आया हूँ, निरा लँडूरा तो नहीं लौट आया। जितना दिया था, उससे दुगना ले लेना।”

"मेरी जीभ जल जाए, बेटा, तुमसे ज़ेवर लूँगी? मेरे मुँह से यूँ ही निकल गया। जो होते, तो लाख बार पहनती!"

साढ़े पाँच बज चुके थे। अभी मिस्टर शामनाथ को खुद भी नहा-धोकर तैयार होना था। श्रीमती कब की अपने कमरे में जा चुकी थीं। शामनाथ जाते हुए एक बार फिर माँ को हिदायत करते गए, "माँ, रोज़ की तरह गुमसुम बन के नहीं बैठी रहना। अगर साहब इधर आ निकलें और कोई बात पूछें, तो ठीक तरह से बात का जवाब देना।"

"मैं न पढ़ी, न लिखी, बेटा, मैं क्या बात करूँगी? तुम कह देना, माँ अनपढ़ है, कुछ जानती-समझती नहीं। वह नहीं पूछेगा।"

सात बजते-बजते माँ का दिल धक-धक करने लगा। अगर चीफ सामने आ गया और उसने कुछ पूछा, तो वह क्या जवाब देंगी। अँग्रेज़ को तो दूर से ही देख कर घबरा उठती थीं, यह तो अमरीकी है। न मालूम क्या पूछे। मैं क्या कहूँगी। माँ का जी चाहा कि चुपचाप पिछवाड़े विधवा सहेली के घर चली जाएँ। मगर बेटे के हुक्म को कैसे टाल सकती थीं। चुपचाप कुर्सी पर से टाँगें लटकाए वहीं बैठी रहीं।

एक कामयाब पार्टी वह है, जिसमें ड्रिंक कामयाबी से चल जाएँ। शामनाथ की पार्टी सफलता के शिखर चूमने लगी। वार्तालाप उसी रौ में बह रहा था, जिस रौ में गिलास भरे जा रहे थे। कहीं कोई रुकावट न थी, कोई अड़चन न थी। साहब को व्हिस्की पसन्द आई थी। मेमसाहब को पर्दे पसन्द आए थे, सोफा-कवर का डिज़ाइन पसन्द आया था, कमरे की सजावट पसन्द आई थी। इससे बढ़ कर क्या चाहिए। साहब तो ड्रिंक के दूसरे दौर में ही चुटकुले और कहानियाँ कहने लग गए थे। दफ्तर में जितना रोब रखते थे, यहाँ पर उतने ही दोस्त-परवर हो रहे थे और उनकी स्त्री काला गाउन पहने, गले में सफेद मोतियों का हार, सेंट और पाउडर की महक से ओत-प्रोत, कमरे में बैठी सभी देसी स्त्रियों की आराधना का केन्द्र बनी हुई थीं। बात-बात पर हँसतीं, बात-बात पर सिर हिलातीं और शामनाथ की स्त्री से तो ऐसे बातें कर रही थीं, जैसे उनकी पुरानी सहेली हों।

और इसी रौ में पीते-पिलाते साढ़े दस बज गए। वक्त गुज़रते पता ही न चला।

आखिर सब लोग अपने-अपने गिलासों में से आखिरी घूँट पीकर खाना खाने के लिए उठे और बैठक से बाहर निकले। आगे-आगे शामनाथ रास्ता दिखाते हुए, पीछे चीफ और दूसरे मेहमान।

बरामदे में पहुँचते ही शामनाथ सहसा ठिठक गए। जो दृश्य उन्होंने देखा, उससे उनकी टाँगें लड़खड़ा गईं, और क्षण-भर में सारा नशा हिरन होने लगा। बरामदे में ऐन कोठरी के बाहर माँ अपनी कुर्सी पर ज्यों-की-त्यों बैठी थीं। मगर दोनों पाँव कुर्सी की सीट पर रखे हुए, और सिर दाएँ से बाएँ और बाएँ से दाएँ झूल रहा था और मुँह में से लगातार गहरे खर्राटों की आवाज़ें आ रही थीं। जब सिर कुछ देर के लिए टेढ़ा होकर एक तरफ को थम जाता, तो खर्राटे और भी गहरे हो उठते। और फिर जब झटके-से नींद टूटती, तो सिर फिर दाएँ से बाएँ झूलने लगता। पल्ला सिर पर से खिसक आया था, और माँ के झरे हुए बाल, आधे गंजे सिर पर अस्त-व्यस्त बिखर रहे थे।

देखते ही शामनाथ क्रुद्ध हो उठे। जी चाहा कि माँ को धक्का देकर उठा दें, और उन्हें कोठरी में धकेल दें, मगर ऐसा करना सम्भव न था, चीफ और बाकी मेहमान पास खड़े थे।

माँ को देखते ही देसी अफसरों की कुछ स्त्रियाँ हँस दीं कि इतने में चीफ ने धीरे-से कहा, "पुअर डियर!"

माँ हड़बड़ा कर उठ बैठीं। सामने खड़े इतने लोगों को देख कर ऐसी घबराईं कि कुछ कहते न बना। झट से पल्ला सिर पर रखती हुई खड़ी हो गईं और ज़मीन को देखने लगीं। उनके पाँव लड़खड़ाने लगे और हाथों की उँगलियाँ थर-थर काँपने लगीं।

"माँ, तुम जाके सो जाओ, तुम क्यों इतनी देर तक जाग रही थीं?" और खिसियाई हुई नज़रों से शामनाथ चीफ के मुँह की ओर देखने लगे।

चीफ के चेहरे पर मुस्कराहट थी। वह वहीं खड़े-खड़े बोले, "नमस्ते!"

माँ ने झिझकते हुए, अपने में सिमटते हुए दोनों हाथ जोड़े, मगर एक हाथ दुपट्टे के अन्दर माला को पकड़े हुए था, दूसरा बाहर, ठीक तरह से नमस्ते भी न कर पाईं। शामनाथ इस पर भी खिन्न हो उठे।

इतने में चीफ ने अपना दायाँ हाथ, हाथ मिलाने के लिए माँ के आगे किया। माँ और भी घबरा उठीं।

"माँ, हाथ मिलाओ।"

पर हाथ कैसे मिलातीं? दाएँ हाथ में तो माला थी। घबराहट में माँ ने बायाँ हाथ ही साहब के दाएँ हाथ में रख दिया। शामनाथ दिल ही दिल में जल उठे। देसी अफसरों की स्त्रियाँ खिलखिला कर हँस पड़ीं।

"यूँ नहीं, माँ! तुम तो जानती हो, दायाँ हाथ मिलाया जाता है। दायाँ हाथ मिलाओ।"

मगर तब तक चीफ माँ का बायाँ हाथ ही बार-बार हिला कर कह रहे थे, "हाउ डू यू डू?"

"कहो माँ, मैं ठीक हूँ, खैरियत से हूँ।"

माँ कुछ बड़बड़ाईं।

"माँ कहती हैं, मैं ठीक हूँ। कहो माँ, हाउ डू यू डू।"

माँ धीरे-से सकुचाते हुए बोलीं, "हौ डू डू ..।"

एक बार फिर कहकहा उठा।

वातावरण हल्का होने लगा। साहब ने स्थिति सँभाल ली थी। लोग हँसने-चहकने लगे थे। शामनाथ के मन का क्षोभ भी कुछ-कुछ कम होने लगा था।

साहब अपने हाथ में माँ का हाथ अब भी पकड़े हुए थे, और माँ सिकुड़ी जा रही थीं। साहब के मुँह से शराब की बू आ रही थी।

शामनाथ अँग्रेज़ी में बोले, "मेरी माँ गाँव की रहने वाली हैं। उमर भर गाँव में रही हैं। इसलिए आपसे लजाती हैं।"

साहब इस पर खुश नज़र आए। बोले, "सच? मुझे गाँव के लोग बहुत पसन्द हैं, तब तो तुम्हारी माँ गाँव के गीत और नाच भी जानती होंगी?" चीफ खुशी से सिर हिलाते हुए माँ को टकटकी बाँधे देखने लगे।

"माँ, साहब कहते हैं, कोई गाना सुनाओ। कोई पुराना गीत तुम्हें तो कितने ही याद होंगे।"

माँ धीरे-से बोलीं, "मैं क्या गाऊँगी बेटा। मैंने कब गाया है?"

"वाह, माँ! मेहमान का कहा भी कोई टालता है? साहब ने इतना रीझ से कहा है, नहीं गाओगी, तो साहब बुरा मानेंगे।"

"मैं क्या गाऊँ, बेटा? मुझे क्या आता है?"

"वाह! कोई बढ़िया टप्पे सुना दो। दो पत्तर अनाराँ दे ...।"

देसी अफसर और उनकी स्त्रियों ने इस सुझाव पर तालियाँ पीटीं। माँ कभी दीन दृष्टि से बेटे के चेहरे को देखतीं, कभी पास खड़ी बहू के चेहरे को।

इतने में बेटे ने गम्भीर आदेश-भरे लिहाज़ में कहा, "माँ!"

इसके बाद 'हाँ' या 'ना' सवाल ही न उठता था। माँ बैठ गईं और क्षीण, दुर्बल, लरजती आवाज़ में एक पुराना विवाह का गीत गाने लगीं -

हरिया नी माए, हरिया नी भैणे

हरिया ते भागी भरिया है!

देसी स्त्रियाँ खिलखिला के हँस उठीं। तीन पंक्तियाँ गा के माँ चुप हो गईं।

बरामदा तालियों से गूँज उठा। साहब तालियाँ पीटना बन्द ही न करते थे। शामनाथ की खीज प्रसन्नता और गर्व में बदल उठी थी। माँ ने पार्टी में नया रंग भर दिया था।

तालियाँ थमने पर साहब बोले, "पंजाब के गाँवों की दस्तकारी क्या है?"

शामनाथ खुशी में झूम रहे थे। बोले, "ओ, बहुत कुछ। साहब! मैं आपको एक सेट उन चीज़ों का भेंट करूँगा। आप उन्हें देख कर खुश होंगे।"

मगर साहब ने सिर हिला कर अँग्रेज़ी में फिर पूछा, "नहीं, मैं दुकानों की चीज़ नहीं माँगता। पंजाबियों के घरों में क्या बनता है, औरतें खुद क्या बनाती हैं?"

शामनाथ कुछ सोचते हुए बोले, "लड़कियाँ गुड़ियाँ बनाती हैं, और फुलकारियाँ बनाती हैं।"

"फुलकारी क्या?"

शामनाथ फुलकारी का मतलब समझाने की असफल चेष्टा करने के बाद माँ को बोले, "क्यों, माँ, कोई पुरानी फुलकारी घर में है?"

माँ चुपचाप अन्दर गईं और अपनी पुरानी फुलकारी उठा लाईं।

साहब बड़ी रुचि से फुलकारी देखने लगे। पुरानी फुलकारी थी, जगह-जगह से उसके तागे टूट रहे थे और कपड़ा फटने लगा था। साहब की रुचि को देखकर शामनाथ बोले, "यह फटी हुई है, साहब, मैं आपको नई बनवा दूँगा। माँ बना देंगी। क्यों माँ, साहब को फुलकारी बहुत पसन्द हैं, इन्हें ऐसी ही एक फुलकारी बना दोगी न?"

माँ चुप रहीं। फिर डरते-डरते धीरे-से बोलीं, "अब मेरी नज़र कहाँ है, बेटा! बूढ़ी आँखें क्या देखेंगी?"

मगर माँ का वाक्य बीच में ही तोड़ते हुए शामनाथ साहब को बोले, "वह ज़रूर बना देंगी। आप उसे देख कर खुश होंगे।"

साहब ने सिर हिलाया, धन्यवाद किया और हल्के-हल्के झूमते हुए खाने की मेज़ की ओर बढ़ गए। बाकी मेहमान भी उनके पीछे-पीछे हो लिए।

जब मेहमान बैठ गए और माँ पर से सबकी आँखें हट गईं, तो माँ धीरे-से कुर्सी पर से उठीं, और सबसे नज़रें बचाती हुई अपनी कोठरी में चली गईं।

मगर कोठरी में बैठने की देर थी कि आँखों में छल-छल आँसू बहने लगे। वह दुपट्टे से बार-बार उन्हें पोंछतीं, पर वह बार-बार उमड़ आते, जैसे बरसों का बाँध तोड़ कर उमड़ आए हों। माँ ने बहुतेरा दिल को समझाया, हाथ जोड़े, भगवान का नाम लिया, बेटे के चिरायु होने की प्रार्थना की, बार-बार आँखें बन्द कीं, मगर आँसू बरसात के पानी की तरह जैसे थमने में ही न आते थे।

आधी रात का वक्त होगा। मेहमान खाना खा कर एक-एक करके जा चुके थे। माँ दीवार से सट कर बैठी आँखें फाड़े दीवार को देखे जा रही थीं। घर के वातावरण में तनाव ढीला पड़ चुका था। मुहल्ले की निस्तब्धता शामनाथ के घर भी छा चुकी थी, केवल रसोई में प्लेटों के खनकने की आवाज़ आ रही थी। तभी सहसा माँ की कोठरी का दरवाज़ा ज़ोर से खटकने लगा।

"माँ, दरवाज़ा खोलो।"

माँ का दिल बैठ गया। हड़बड़ा कर उठ बैठीं। क्या मुझसे फिर कोई भूल हो गई? माँ कितनी देर से अपने आपको कोस रही थीं कि क्यों उन्हें नींद आ गई, क्यों वह ऊँघने लगीं। क्या बेटे ने अभी तक क्षमा नहीं किया? माँ उठीं और काँपते हाथों से दरवाज़ा खोल दिया।

दरवाज़े खुलते ही शामनाथ झूमते हुए आगे बढ़ आए और माँ को आलिंगन में भर लिया।

"ओ अम्मी! तुमने तो आज रंग ला दिया! ...साहब तुमसे इतना खुश हुआ कि क्या कहूँ। ओ अम्मी! अम्मी!"

माँ की छोटी-सी काया सिमट कर बेटे के आलिंगन में छिप गई। माँ की आँखों में फिर आँसू आ गए। उन्हें पोंछती हुई धीरे-से बोलीं, "बेटा, तुम मुझे हरिद्वार भेज दो। मैं कब से कह रही हूँ।"

शामनाथ का झूमना सहसा बन्द हो गया और उनकी पेशानी पर फिर तनाव के बल पड़ने लगे। उनकी बाँहें माँ के शरीर पर से हट आईं।

"क्या कहा, माँ? यह कौन-सा राग तुमने फिर छेड़ दिया?"

शामनाथ का क्रोध बढ़ने लगा था, बोलते गए, "तुम मुझे बदनाम करना चाहती हो, ताकि दुनिया कहे कि बेटा माँ को अपने पास नहीं रख सकता।"

"नहीं बेटा, अब तुम अपनी बहू के साथ जैसा मन चाहे रहो। मैंने अपना खा-पहन लिया। अब यहाँ क्या करूँगी? जो थोड़े दिन ज़िन्दगानी के बाकी हैं, भगवान का नाम लूँगी। तुम मुझे हरिद्वार भेज दो!"

"तुम चली जाओगी, तो फुलकारी कौन बनाएगा? साहब से तुम्हारे सामने ही फुलकारी देने का इकरार किया है।"

"मेरी आँखें अब नहीं हैं, बेटा, जो फुलकारी बना सकूँ। तुम कहीं और से बनवा लो। बनी-बनाई ले लो।"

"माँ, तुम मुझे धोखा देके यूँ चली जाओगी? मेरा बनता काम बिगाड़ोगी? जानती नहीं, साहब खुश होगा, तो मुझे तरक्की मिलेगी!"

माँ चुप हो गईं। फिर बेटे के मुँह की ओर देखती हुई बोलीं, "क्या तेरी तरक्की होगी? क्या साहब तेरी तरक्की कर देगा? क्या उसने कुछ कहा है?"

"कहा नहीं, मगर देखती नहीं, कितना खुश गया है। कहता था, जब तेरी माँ फुलकारी बनाना शु डिग्री करेंगी, तो मैं देखने आऊँगा कि कैसे बनाती हैं। जो साहब खुश हो गया, तो मुझे इससे बड़ी नौकरी भी मिल सकती है, मैं बड़ा अफसर बन सकता हूँ।"

माँ के चेहरे का रंग बदलने लगा, धीरे-धीरे उनका झुर्रियों-भरा मुँह खिलने लगा, आँखों में हल्की-हल्की चमक आने लगी।

"तो तेरी तरक्की होगी बेटा?"

"तरक्की यूँ ही हो जाएगी? साहब को खुश रखूँगा, तो कुछ करेगा, वरना उसकी खिदमत करने वाले और भी हैं।"

"तो मैं बना दूँगी, बेटा, जैसे बन पड़ेगा, बना दूँगी।"

और माँ दिल-ही-दिल में फिर बेटे के उज्ज्वल भविष्य की कामनाएँ करने लगीं और मिस्टर शामनाथ, "अब सो जाओ, माँ," कहते हुए, तनिक लड़खड़ाते हुए अपने कमरे की ओर घूम गए।

‘चीफ की दावत’ भीष्म साहनी द्वारा रचित प्रमुख कहानी है। इस कहानी में उन्होने मध्यमवर्गीय समाज के खोखलेपन तथा दिखावटीपन को दर्शाया है। उनके द्वारा रचित कहानी आज भी उतनी ही प्रासंगिक है। जितनी उस समय थी। भीष्म साहनी ने शामनाथ के माध्यम से शिक्षित युवा पीढ़ी पर करारा व्यंग्य किया है। आज के शिक्षित युवा वर्ग अपने माता पिता को बोझ समझते हैं। व्यक्ति अपनी सुख सुविधा के लिए अपने माता पिता को छोड़ देते हैं। वे यह तक भूल जाते हैं कि आज जिस समाज मे तुम रह रहे हो उनकी बदौलत है। अपने बच्चो को काबिल बनाने के लिए माता पिता अपना सर्वस्व समर्पित कर देते हैं। उनका पूरा जीवन अपने बच्चों की खुशी के लिए बलिदान में व्यतीत हो जाता है। ‘चीफ की दावत’ एक ऐसी ही कहानी है, जिसमें स्वार्थी बेटे शामनाथ को अपनी विधवा बूढ़ी माँ का बलिदान फर्ज ही नजर आता है।

आदमी का बच्चा - कहानी का मुख्य पात्र है- **डौली** । वह वग्गा साहब की इकलौती पुत्री है। घर मेंतो किसी का भी अभाव नहीं है। अकेली होने के कारण वह धोबी -माली के बच्चों के साथ खेलना चाहती है।लेकिन मामा उसे रोकती है।जब डौली के पिल्लै होते है,तब वह बहूत खुश होते है,तब वह बहूत खुस होती है।वह उसके साथ खेलना चाहती है। लेकिन बग्गा साहब उन पिल्ललों को भी मरवा डालते है । भूख के कारण ही पिल्लों को मरवा डाला है। यह जानकर डौली विस्मित होती है। धोबी के बच्चा जब मर जाता है तो डौली आया से पूछती है ,क्या माली के बच्चे को भी गरम पानी में डूबवाकर मार दिया गया है? इस प्रकार डौली में हम एक भोले-भाले बच्चे को देखते है।

गरीब बच्चे जीवन की बुनियादी सुविधाओं से वंचित हैं आदमी का बच्चा कहानी में भी यही बात देखने को मिलते है । समाज में उच्च वर्ग के तथा निम्नवर्ग के लोग दिखाई देते हैं। यह विभाजन मुख्य रूप से धन संपत्ति के आधार पर होता है । धन के अभाव में गरीबों को आवश्यक भोजन व शिक्षा नहीं मिलते ।उन्हें समाज में एक तरह से उपेक्षित जीवन बिताना पड़ता है। डौली के लिए जीवन की सुख सुविधाएँ काफ़ी थी। उसकी देखभाल भी बड़ी सतर्कता से की जाती है।लेकिन धोबी-माली के बच्चे तो गरीब हैं। उसका पालन पोषण केलिए पर्याप्त धन उसके पास नहीं होते। सफ़ाई आदि में भी वे पीछे रह जाते हैं।धन और शिक्षा की कमी के कारण ही उच्च वर्ग के लोग उन्हें बेहूदे तक कहते है। समाज का यह कर्तव्य है -आधुनिक समाज के मनुष्यों में इस तरह की भिन्नता न रहने दे। सब को समान रूप से देखा जाए । सब को बराबरी का अवसर प्रदान किया जाए।

आदमी का बच्चा

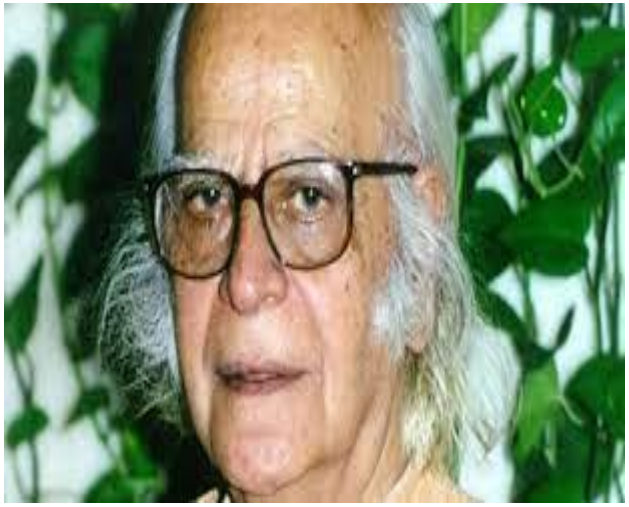

यशपाल

यशपाल का जन्म 3 दिसम्बर 1903 को पंजाब में, फ़ीरोज़पुर छावनी में एक साधारण खत्री परिवार में हुआ था। उनकी माँ श्रीमती प्रेमदेवी वहाँ अनाथालय के एक स्कूल में अध्यापिका थीं। यशपाल के पिता हीरालाल एक साधारण कारोबारी व्यक्ति थे। यशपाल के लेखन की प्रमुख विधा उपन्यास है, लेकिन अपने लेखन की शुरूआत उन्होने कहानियों से ही की।

यशपाल हिन्दी साहित्य के प्रेमचंदोत्तर युगीन कथाकार हैं। ये विद्यार्थी जीवन से ही क्रांतिकारी आन्दोलन से जुड़े थे। इन्हें साहित्य एवं शिक्षा के क्षेत्र में भारत सरकार द्वारा सन् १९७० में पद्म भूषण से सम्मानित किया गया था।

उनके कहानी-संग्रहों में पिंजरे की उड़ान, ज्ञानदान, भस्मावृत्त चिनगारी, फूलों का कुर्ता, धर्मयुद्ध, तुमने क्यों कहा था मैं सुन्दर हूँ और उत्तमी की माँ प्रमुख हैं।

दोपहर तक डॉली कान्वेंट (अंग्रेज़ी स्कूल) में रहती है. इसके बाद उसका समय प्रायः पाया 'बिंदी' के साथ कटता है. मामा दोपहर में लंच के लिए साहब की प्रतीक्षा करती है. साहब जल्दी में रहते हैं. ठीक एक बजकर सात मिनट पर आए, गुसलखाने में हाथ-मुंह धोया, इतने में मेज पर खाना आ जाता है. आधे घंटे में खाना समाप्त कर, सिगार सुलगा साहब कार में मिल लौट जाते हैं. लंच के समय डॉली खाने के कमरे में नहीं आती, अलग खाती है.

संध्या साढ़े पांच बजे साहब मिल से लौटते हैं तो बेफ़िक्र रहते हैं. उस समय वे डॉली को अवश्य याद करते हैं. पांच-सात मिनट उससे बात करते हैं और फिर मामा से बातचीत करते हुए देर तक चाय पर बैठे रहते हैं. मामा दोपहर या तीसरे पहर कहीं बाहर जाती हैं तो ठीक पांच बजे लौट कर साहब के लिए कार मिल में भेज देती हैं. डॉली को बुला साहब के मुआयने के लिए तैयार कर लेती हैं. हाथ-मुंह धुलवा कर डॉली की सुनहलापन लिए, काली-कत्थई अलकों में वे अपने सामने कंघी कराती हैं. स्कूल की वर्दी की काली-सफ़ेद फ्रॉक उतारकर, दोपहर में जो मामूली फ्रॉक पहना दी जाती है उसे बदल नई बढ़िया फ्राक उसे पहनायी जाती है. बालों में रिबन बांधा जाता है. सैंडल के पालिश तक पर मामा की नज़र जाती है.

बग्गा साहब मिल में चीफ़ इंजीनियर हैं. विलायत पास हैं. बारह सौ रुपया महीना पाते हैं. जीवन से संतुष्ट हैं परंतु अपने उत्तरदायित्व से भी बेपरवाह नहीं. बस एक ही लड़की है डॉली. पांचवें वर्ष में है. उसके बाद कोई संतान नहीं हुई. एक ही संतान के प्रति अपना कर्तव्य पूरा कर सकने से साहब और मामा को पर्याप्त संतोष है. बग्गा साहब की नज़रों में संतान के प्रति उत्तरदायित्व का आदर्श ऊंचा है. वे डॉली को बेटी या बेटा सब कुछ समझकर संतोष किये हैं. यूनिवर्सिटी की शिक्षा तो वह पायेगी ही. इसके बाद शिक्षा-क्रम पूरा करने के लिए उसका विलायत जाना भी आवश्यक और निश्चित है. संतान के प्रति शिक्षा के उत्तरदायित्व का यह आदर्श कितनी संतानों के प्रति पूरा किया जा सकता है? साहब कहते हैं,'यों कीड़े-मकोड़े की तरह पैदा करके क्या फ़ायदा?' मामा-मिसेज़ बग्गा भी हामी भरती हैं,'और क्या?'

'डॉली! ...डॉली! ...डॉली!...' मामा तीन दफ़े पुकार चुकी थीं. चौथी दफ़े, उन्होंने आया को पुकारा. कोई उत्तर न पा वे खिसिया कर स्वयं बरामदे से निकल आईं. अभी उन्हें स्वयं भी कपड़े बदलने थे. देखा-बंगले के पिछवाड़े से, जहां धोबी और माली के क्वॉर्टर हैं, आया डॉली को पकड़े, लिए आ रही है. मामा ने देखा और धक्क से रह गईं. वे समझ गईं-डॉली अवश्य माली के घर गई होगी. दो-तीन दिन पहले मालिन के बच्चा हुआ था. उसे गोद में लेने के लिए डॉली कितनी ही बार ज़िद्द कर चुकी थी. डॉली के माली की कोठरी में जाने से मामा भयभीत थीं. धोबी के लड़के को पिछले ही सप्ताह खसरा निकला था.

लड़की उधर जाती तो उन बेहूदे बच्चों के साथ शहतूत के पेड़ के नीचे धूल में से उठा-उठाकर शहतूत खाती. उन्हें भय था, उन बच्चों के साथ डॉली की आदतें बिगड़ जाने का. आया इन सब अपराधों का उत्तरदायित्व अपने ऊपर अनुभव कर भयभीत थी. मेम साहब के सम्मुख उनकी बेटी की उच्छृंखलता से अपनी बेबसी दिखाने के लिए वह डॉली से एक क़दम आगे, उसकी बांहें थामे यों लिए आ रही थी जैसे स्वच्छंदता से पत्ती चरने के लिए आतुर बकरी को ज़बरन कान पकड़ घर की ओर लाया जाता है.

मामा के कुछ कह सकने से पहले ही आया ने ऊंचे स्वर में सफ़ाई देना शुरू किया,'हम ज़रा सैंडिल पर पालिश करें के तईं भीतर गएन. हम से बोलीं कि हम गुसलखाने जाएंगे. इतने में हम बाहर निकल कर देखें तो माली के घर पहुंची हैं. हमको तो कुछ गिनती ही नहीं. हम समझाएं तो उलटे हमको मारती है...'

इस पेशबंदी के बावजूद भी आया को डांट पड़ी.

'दिस इज़ वेरी सिली!' मामा ने डॉली को अंग्रेज़ी में फटकारा. अंग्रेज़ी के सभी शब्दों का अर्थ न समझ कर भी डॉली अपना अपराध और उसके प्रति मामा की उद्विग्नता समझ गई.

तुरंत साबुन से हाथ-मुंह धुलाकर डॉली के कपड़े बदले गए. चार बज कर बीस मिनट हो चुके थे, इसलिए आया जल्दी-जल्दी डॉली को मोजे और सैंडल पहना रही थी और मामा स्वयं उसके सिर में कंघी कर उसकी लटों के पेचों को फीते से बांध रही थी. स्नेह से बेटी की पलकों को सहलाते हुए उन्हें अचानक गर्दन पर कुछ दिखलाई दिया-जूं! वज्रपात हो गया. निश्चय ही जूं माली और धोबी के बच्चों की संगत का परिणाम थी. आया पर एक और डांट पड़ी और नोटिस दे दी गई कि यदि फिर डॉली आवारा, गंदे बच्चों के साथ खेलती पायी गई तो वह बर्ख़ास्त कर दी जाएगी.

बेटी की यह दुर्दशा देख मां का हृदय पिघल उठा. अंग्रेज़ी छोड़ वे द्रवित स्वर में अपनी ही बोली में बेटी को दुलार से समझाने लगीं,'डॉली तो प्यारी बेटी है, बड़ी ही सुंदर, बड़ी ही लाड़ली बेटी. हम इसको सुंदर-सुंदर कपड़े पहनाते हैं. डॉली, तू तो अंग्रेज़ों के बच्चों के साथ स्कूल जाती है न बस में बैठकर! ऐसे गंदे बच्चों के साथ नहीं खेलते न!'

मचल कर फर्श पर पांव पटक डॉली ने कहा,'मामा, हमको माली का बच्चा ले दो, हम उसे प्यार करेंगे.'

'छी...छी...!' मामा ने समझाया,'वह तो कितना गंदा बच्चा है! ऐसे गंदे बच्चों के साथ खेलने से छी-छी वाले हो जाते हैं. इनके साथ खेलने से जुएं पड़ जाती हैं. वे कितने गंदे हैं, काले-काले धत्त! हमारी डॉली कहीं काली है? आया, डॉली को खेलने के लिए मैनेजर साहब के यहां ले जाया करो. वहां यह रमन और ज्योति के साथ खेल आया करेगी. इसे शाम को कम्पनी बाग ले जाना.'

डॉली ने मां के गले में बांहें डाल विश्वास दिलाया कि अब वह कभी गंदे और छोटे लोगों के काले बच्चों के साथ नहीं खेलेगी. उस दिन चाय पीते-पीते बग्गा साहब और मिसेज़ बग्गा में चर्चा होती रही कि बच्चे न जाने क्यों छोटे बच्चों से खेलना पसंद करते हैं. ...एक बच्चे को ही ठीक से पाल सकना मुश्किल है. जाने कैसे लोग इतने बच्चों को पालते हैं. ...देखो तो माली को! कमबख्त के तीन बच्चे पहले हैं, एक और हो गया.

बग्गा साहब के यहां एक कुतिया विचित्र नस्ल की थी. कागज़ी बादाम का सा रंग, गर्दन और पूंछ पर रेशम के से मुलायम और लम्बे बाल, सीना चौड़ा. बांहों की कोहनियां बाहर को निकली हुई. पेट बिल्कुल पीठ से सटा हुआ. मुंह जैसे किसी चोट से पीछे को बैठ गया हो. आंखें गोल-गोल जैसे ऊपर से रख दी गई हों. नए आने वालों की दृष्टि उसकी ओर आकर्षित हुए बिना न रहती. यही कुतिया की उपयोगिता और विशेषता थी. ढाई सौ रुपया इसी शौक़ का मूल्य था.

कुतिया ने पिल्ले दिए. डॉली के लिए यह महान उत्सव था. वह कुतिया के पिल्लों के पास से हटना न चाहती थी. उन चूहे-जैसी मुंदी हुई आंखों वाले पिल्लों को मांगने वालों की कमी न थी परंतु किसे दें और किसे इनकार करें? यदि इस नस्ल को यों बांटने लगें तो फिर उसकी कद्र ही क्या रह जाय? कुतिया का मोल ढाई सौ रुपया उसके दूध के लिए तो होता नहीं!

साहब का कायदा था, कुतिया पिल्ले देती तो उन्हें मेहतर से कह गरम पानी में गोता दे मरवा देते. इस दफ़े भी वे यही करना चाहते थे परंतु डॉली के कारण परेशान थे. आख़िर उसके स्कूल गए रहने पर बैरे ने मेहतर से काम करवा डाला.

स्कूल से लौट डॉली ने पिल्लों की खोज शुरू की. आया ने कहा,'पिल्ले मैनेजर साहब के यहां रमन को दिखाने के लिए भेजे हैं, शाम को आ जाएंगे.'

मामा ने कहा,'बेबी, पिल्ले सो रहे हैं. जब उठेंगे तो तुम उनसे खेल लेना.'

डॉली पिल्लों को खोजती फिरी. आखिर मेहतर से उसे मालूम हो गया कि वे गरम पानी में डुबो कर मार डाले गए हैं.

डॉली रो-रोकर बेहाल हो रही थी. आया उसे पुचकारने के लिए गाड़ी में कम्पनी बाग ले गई. डॉली बार-बार पूछ रही थी- 'आया, पिल्लों को गरम पानी में डुबो कर क्यों मार दिया?'

आया ने समझाया,'डैनी (कुतिया) इतने बच्चों को दूध कैसे पिलाती? वे भूख से चेऊं-चेऊं कर रहे थे, इसीलिए उन्हें मरवा दिया.' दो दिन तक डॉली के पिल्लों का मातम डैनी और डॉली ने मनाया फिर और लोगों की तरह वे भी उन्हें भूल गईं.

माली ने नए बच्चे के रोने की 'कें-कें' आवाज़ आधी रात में, दोपहर में, सुबह-शाम किसी भी समय आने लगती. मिसेज़ बग्गा को यह बहुत बुरा लगता. झल्ला कर वे कह बैठतीं,'जाने इस बच्चे के गले का छेद कितना बड़ा है.'

बच्चे की कें-कें उन्हें और भी बुरी लगती जब डॉली पूछने लगती,‘मामा, माली का बच्चा क्यों रो रहा है?’

बिंदी समीप ही बैठी बोल उठी,‘रोयेगा नहीं तो क्या, मां के दूध ही नहीं उतरता.’

मामा और बिंदी को ध्यान नहीं था कि डॉली उनकी बात सुन रही है. डॉली बोल उठी,‘मामा, माली के बच्चे को मेहतर से गरम पानी में डुबा दो तो फिर नहीं रोएगा.’

बिंदी ने हंस कर धोती का आंचल होंठों पर रख लिया. मामा चौंक उठीं. डॉली अपनी भोली, सरल आंखों में समर्थन की आशा लिए उनकी ओर देख रही थी.

‘दिस इज़ वेरी सिली डॉली... कभी आदमी के बच्चे के लिए ऐसा कहा जाता है.’ मामा ने गम्भीरता से समझाया. परिस्थिति देख आया डॉली को बाहर घुमाने ले गई.

तीसरे दिन संध्या समय डॉली मैनेजर साहब के यहां रमन और ज्योति के साथ खेल कर लौट रही थी. बंगले के दरवाज़े पर माली अपने नए बच्चे को कोरे कपड़े में लपेटे दोनों हाथों पर लिए बाहर जाता दिखाई दिया. उसके पीछे मालिन रोती चली आ रही थी.

आया ने मरे बच्चे की परछाईं पड़ने के डर से उसे एक ओर कर लिया. डॉली ने पूछा,‘यह क्या है? आया, माली क्या ले जा रहा है?’

‘माली का छोटा बच्चा मर गया है.’ धीमे-से आया ने उत्तर दिया और डॉली को बांह से थाम बंगले के भीतर ले चली.

डॉली ने अपनी भोली, नीली आंखें आया के मुख पर गड़ा कर पूछा,‘आया, माली के बच्चे को क्या गरम पानी में डुबो दिया?’

‘छिः डॉली, ऐसी बातें नहीं कहते!’ आया ने धमकाया, ‘आदमी के बच्चे को ऐसे थोड़े ही मारते हैं!’

डॉली का विस्मय शांत न हुआ. दूर जाते माली की ओर देखने के लिए घूमकर उसने फिर पूछा,‘तो आदमी का बच्चा कैसे मरता है?’

लड़की का ध्यान उस ओर से हटाने के लिए उसे बंगले के भीतर खींचते हुए आया ने उत्तर दिया,‘वह मर गया, भूख से मर गया है. चलो मामा बुला रही हैं.’

डॉली चुप न हुई, उसने फिर पूछा,‘आया, हम भी भूख से मर जायेंगे?’

‘चुप रहो डॉली!’ आया झुंझला उठी,‘ऐसी बात करोगी तो मामा से कह देंगे.’

लड़की के चेहरे की सरलता से उसकी मां का हृदय पिघल उठा. उसकी घुंघराली लटों को हाथ से सहलाते हुए आया कहने लगी,‘बैरी की आंख में राई-नोन! हाय मेरी मिस साहब, तुम ऐसे आदमी थोड़े ही हो! ...भूख से मरते हैं कमीने आदमियों के बच्चे.’

कहते-कहते आया का गला रुंध गया. उसे अपना लल्लू याद आ गया... दो बरस पहले...! तभी तो वह साहब के यहां नौकरी कर रही थी.

****

आदमी का बच्चा
(यशपाल)
समस्या : शहरीकरण मानवों में स्वार्थता एवं असमत्व पैदा करता है।

आशय : जीवन को संघर्षमुक्त बनाने के लिए औरों से दिली संबंध रखना है।
आदमी का बच्चा - कहानी का मुख्य पात्र है- डौली । वह वग्गा साहब की इकलौती पुत्री है। घर मेंतो किसी का भी अभाव नहीं है। अकेली होने के कारण वह धोबी -माली के बच्चों के साथ खेलना चाहती है।लेकिन मामा उसे रोकती है।जब डौली के पिल्लै होते है,तब वह बहूत खुश होते है,तब वह बहूत खुस होती है।वह उसके साथ खेलना चाहती है। लेकिन बग्गा साहब उन पिल्ललों को भी मरवा डालते है । भूख के कारण ही पिल्लों को मरवा डाला है। यह जानकर डौली विस्मित होती है। धोबी के बच्चा जब मर जाता है तो डौली आया से पूछती है ,क्या माली के बच्चे को भी गरम पानी में डूबवाकर मार दिया गया है? इस प्रकार डौली में हम एक भोले-भाले बच्चे को देखते है।
गरीब बच्चे जीवन की बुनियादी सुविधाओं से वंचित हैं
समाज में उच्च वर्ग के तथा नि म्नवर्ग के लोग दिखाई देते हैं। यह विभाजन मुख्य रूप से धन संपत्ति के आधार पर होता है । धन के अभाव में गरीबों को आवश्यक भोजन व शिक्षा नहीं मिलते ।उन्हें समाज में एक तरह से उपेक्षित जीवन बिताना पड़ता है। आदमी का बच्चा कहानी में भी यही बात देखने को मिलते है । डौली के लिए जीवन कीसुख सुविधाएँ काफ़ी थी। उसकी देखभाल भी बड़ी सतर्कता से की जाती है।लेकिन धोबी-माली के बच्चे तो गरीब हैं। उसका पालन पोषण केलिए पर्याप्त धन उसके पास नहीं होते। सफ़ाई आदि में भी वे पीछे रह जाते हैं।धन और शिक्षा की कमी के कारण ही उच्च वर्ग के लोग उन्हें बेहूदे तक कहते है। समाज का यह कर्तव्य है -आधुनिक समाज के मनुष्यों में इस तरह की भिन्नता न रहने दे। सब को समान रूप से देखा जाए । सब को बराबरी का अवसर प्रदान किया जाए।

फाइल

मधु कांकरिया

जीवन परिचय

मधु कांकरिया :मधु कांकरिया जन्म 23 मार्च, 1957 को कोलकाता में हुआ। उन्होंने कोलकाता विश्वविद्यालय से अर्थशास्त्र (आनर्स) में एम° ए° की शिक्षा प्राप्त की तथा कोलकाता से ही कम्प्यूटर एप्लीकेशन में डिप्लोमा किया। हिन्दी साहित्य की प्रतिष्ठित लेखिका, कथाकार तथा उपन्यासकार हैं। उन्होंने बहुत सुन्दर यात्रा-वृत्तांत भी लिखे हैं। उनकी रचनाओं में विचार और संवेदना की नवीनता तथा समाज में व्याप्त अनेक ज्वलंत समस्याएं जैसे संस्कृति, महानगर की घुटन और असुरक्षा के बीच युवाओं में बढ़ती नशे की आदत, लालबत्ती इलाकों की पीड़ा नारी अभिव्यक्ति उनकी रचनाओं के विषय रहे हैं।

रचनाऐं

कहानी संग्रह

- चिड़िया ऐसे मरती है
- काली चील
- *फाइल*
- उसे बुद्ध ने काटा
- अंतहीन मरुस्थल
- और अंत में यीशु
- बीतते हुए
- भरी दोपहरी के अँधेरे

उपन्यास

- खुले गगन के लाल सितारे
- सूखते चिनार
- सलाम आखिरी
- पत्ता खोर
- सेज पर संस्कृत
- हम यहाँ थे

यात्रा वृतान्त

- बुद्ध
- बारूद और पहाड़
- शहर शहर जादू
- बंजारा मन और बंदिशे
- साना साना हाथ जोड़ी

टेलीफिल्म

- रहना नहीं देश वीराना है

(प्रसार भारती द्वारा 2008 में)

सम्मान

- कथाक्रम सम्मान (आनंद सागर स्मृति सम्मान) (2008)
- हेमचंद्र आचार्य साहित्य सम्मान (विद्या मंच द्वारा) (2009)
- अखिल भारतीय मारवाड़ी युवा मंच द्वारा मारवाड़ी समाज गौरव सम्मान 2009)
- विजय वर्मा कण सम्मान (2012)
- शिवकुमार मिश्र स्मृति कथा सम्मान
- रत्नीदेवी गोयनका वाग्देवी सम्मान

Pinky
FILE
Madhu Kankaria

फाइल

मधु कांकरिया

परी-कथाओं-सी मोहक तारों-भरी वह रात - इतनी संपूर्ण और जादूभरी थी कि उसके आकर्षण की डोर में बँधे हम सभी गोल-गोल घेरा बनाकर बैठ गए, मंद-मंथर बहती हवा, महकते बेला फूल और देवदारु के झुरमुटों से छनकर आती चाँदनी... हम पर अलौकिकता का वह दौरा पड़ा कि हम सभी रोटी-लँगोटी की बात भूल जीवन और अनुभूतियों की बातें करने लगे। एकाएक श्यामली दी ने मुझसे पूछा, "जानते हो, दुनिया का सबसे बड़ा सुख क्या है?" मैं गोबर गणेश की तरह आसमान की ओर ताकने लगी, जैसे वहीं से उतरेगा कोई जवाब। वे मुस्कराईं और बोलीं, "दुनिया का सबसे बड़ा सुख है निस्वार्थ सात्विक सुख।"

हमारी टोली के सबसे छोटे सदस्य श्रीकांत के माथे पर सिलवटें गहराईं, "यह किस चिड़िया का नाम?"

जिंदगी का सारा रहस्य जान लेने वाले आत्मविश्वास के साथ वे मुस्कराईं, "जिसने यह नहीं जाना, जानो उसका जीवन डस्टबिन पर मँडराते आत्मतृप्त कॉकरोच-सा।"

श्रीकांत ताव खा गया, "तो बताइए, आपने ही कब भोगा इसे?" कुछ उस रात का तिलस्म, कुछ हमारा आग्रह... रफ्ता-रफ्ता श्यामली दी पीछे घूम गईं। रसीले फानूस आम की तरह टप-टप टपकती स्मृतियाँ। चाँदनी-सी एक उज्ज्वल रेखा उनके अधरों पर उभरी।

सरसराते पत्तों की आवाजों के बीच गूँजने लगी उनकी आवाज - "मेरे जीवन के सबसे मचलते हुए दिन थे वे। पक्षी की पहली उड़ान की तरह ही रोमांचित, मैं उन दिनों सिनी आशा में थी।"

"सिनी आशा! वह क्या?" मैंने और श्रीकांत ने एक साथ पूछा।

"कोलकाता में रहते हो और 'सिनी आशा' का नाम नहीं जानते? स्ट्रीट चिल्ड्रेन के लिए सबसे नामी स्वयंसेवी संस्था है यह सिनी आशा।" उन्होंने दाएँ हाथ की चूड़ियाँ ऊपर खिसकाईं और फिर प्रवाह में बहने लगीं - "हाँ, तो मैं बता रही थी कि अनुभवों की पूँजी बटोरने के वे मेरे सबसे समृद्ध दिन थे... हर दिन कुछ न कुछ अजूबा देखने को मिलता। पहले दिन ही मजा आ गया। जैसे ही सिनी आशा की दहलीज पार करने लगी कि देखा, बाहरी दीवाल पर किसी मसखरे ने लिख मारा था, 'देखो, देखो, गधा मूत रहा है।' मैं अवाक् इतनी साफ-सफाक सफेद दीवाल पर कोयले से यह किसने लिख मारा? सुरक्षा गार्ड ने हँसते हुए बताया, 'यह तपती दी की खोपड़ी से निकला है। जिसको देखो जीप खोलता और गंगाजल बहा देता... रात को मारे बदबू के हम लोग सोने न सकता। कितनी ही बार लिखा - पिसाब करना मना... पर कौन सुनता... तो तपती दी ने गुस्सा कर ऐसा लिख मारा।'

"'बहुत खूब!' मैं ऊपर पहुँची तो देखा, झुंड के झुंड में पसीने की गंध से बजबजाती, उठंग साड़ी पहने करीब चालीस-पचास महिलाएँ एक बड़े-से कमरे में उजबक की तरह बैठी हुई हैं। पता चला सियालदह प्लेटफॉर्म, झुग्गी-झोंपड़ियों और फुटपाथों पर रहनेवाली ये वे महिलाएँ हैं, जिनके बच्चे सिनी आशा द्वारा किसी चैरिटेबल या अर्द्ध-चैरिटेबल हॉस्टल में भेज दिए गए हैं। इन सबके बीच तृप्ति दी बड़े तृप्त भाव से उन्हें समझा रही थीं - 'दया करके आप लोग महीने में कम से कम एक बार अपने बच्चों से अवश्य मिलने जाएँ... आपको ताकते-ताकते आँखें बाहर निकल आती हैं बेचारों की।'

"इधर माताएँ मुड़ीं कि उधर तृप्ति दी फिर चालू - 'अब इन्हें भी क्या दोष दूँ... यहाँ हर चीज का टोटा। अब बच्चों को मुफ्त हॉस्टल में डाल भी दिया तो जाने-आने के भाड़े का जुगाड़ मुश्किल, जुगाड़ हो गया तो दिन-भर की खटनी से समय निकाल पाना और भी मुश्किल, तो यह तो है हाल...' कमर में पल्लू खोंसते हुए तृप्ति दी ने चिंता-भरे स्वर में कहा।

"'यह तो है हाल' तृप्ति दी का सबसे प्यारा जुमला था, जिसे वे गाहे-बगाहे जब-तब हर व्यक्ति और स्थिति पर जड़ दिया करती थीं। उस दिन शाम को वे घर के लिए मेरे साथ ही निकलीं। मौका पाकर मैंने पूछा, 'यह सिनी आशा क्या किसी बंगाली बाबू की देन है?' वे फिर चालू हो गईं - 'अरे नहीं, यह तो किसी आयरलैंडवासी ने बनवाया था। अब देखो, यह तो है हाल, आया तो था यहाँ तफरीह करने, आत्मा-परमात्मा, जन्म-पूर्वजन्म, मंदिरों और विभिन्न आस्थाओं वाले इस देश को जानने-बूझने, पर मन रमा यहाँ की कालाहाँडी में। कहते हैं कि धूल में रेंगते-रिसते, फुटपाथों पर रोते-कलपते, बच्चों, नशे एवं कुटेवों के शिकार किशोरों और लालबत्ती इलाकों की जख्म-खाई किशोरियों को देख वह विचलित हो उठा और उसने इस संस्था की नींव डाली और जाते-जाते कह गया... जिस परम तत्व और परमात्मा की खोज में मैं आया था, उसके मर्म को पा लिया...'

"पान की गिलौरी को दाएँ से बाएँ घुमाते हुए वे फिर चालू हो गईं - 'अब तुम्हीं देखो, इतने बड़े कोलकाता में जितने भी नशेड़ियों, फुटपाथियों और अनाथ बच्चों, दबे-कुचले बच्चों या वासना की शिकार हुई युवतियों के लिए स्वयंसेवी संस्थान हैं, वे सब ईसाइयों द्वारा स्थापित हैं, तो यह है हाल... हम भारतीयों को तो पूजा-पाठ, धर्मशालाएँ, तीर्थ-यात्रा और मंदिर-निर्माण से ही कहाँ फुर्सत है।'

"'इन्हें विदेशों से फंड मिल जाता है,' मैं बीच में ही बोल पड़ी थी।

"मुझे तेजी से काटते हुए कहा - 'न... न... ऐसी बात नहीं वरन् मुझे तो लगता है कि यह इसलिए है कि इन्होंने धर्म को जीवन और रोटी से सीधा जोड़ इसे फुटपाथों और झुग्गी-झोंपड़ियों तक पहुँचाया है जबकि हमने धर्म की ऊँची उड़ानें भरी हैं, अपने परिष्कृत रूप में हमारे यहाँ धर्म की शुरुआत अंतर्यात्रा से होती हुई अंत:करण की शुद्धता और परम तत्व की प्राप्ति पर खत्म हो जाती है, अब तुम्हीं देखो... उस आयरलैंडवासी के हृदय में कितनी मानवीय और महीन बात आई कि जिन किशोरियों को हम भविष्य नहीं दे सकते, कम से कम रात-भर के लिए नाइट-शेल्टर की व्यवस्था कर उन्हें भविष्य के लिए बचाकर तो रख सकते हैं।'

"पान की गिलौरी को बाएँ से दाएँ घुमाते हुए किसी तत्व-दर्शक की तरह फिर उन्होंने एक पते की बात कही - 'जानती हो श्यामली, मैं कई बार सोचती हूँ कि हमारे यहाँ क्रिश्चिएनिटी जैसे स्थूल धार्मिक सिद्धांतों की जरूरत है क्योंकि हम तो अभी तक रोटी और लँगोटी की जरूरत से ही ऊपर नहीं उठ पाए हैं और उनको चेतना, अंतरात्मा, वेदांत और उपनिषद् की... जिससे अतिभोग और अतिचार के मारे वे यहाँ की त्याग और तपस्या की अवधारणा से संतुलित और अनुशासित हो सकें।'

"बात पूरी कर भी नहीं पाई थीं तृप्ति दी कि तभी हलका-सा हो-हल्ला सुनाई दिया, एक फील्ड वर्कर दौड़ती आई, 'तृप्ति दी, झुनिया और मंगला के माई-बाप आए हैं।'

"कमर में पल्लू खोंसे जीवन से झल्लाई किसी बूढ़ी की तरह तृप्ति दी फिर बड़बड़ाईं, 'जीना हराम कर रखा है इन लोगों ने।' सीढ़ी की रेलिंग को पकड़े, किसी बोरी की तरह लुढ़कते-ठुमकते तृप्ति दी नीचे ऑफिस में...।

"जिंदगी का बोझ ढोती पसीने से लथपथ एक देह। बरसाती फफूँद-सी बढ़ी दाढ़ी। जैसे ही तृप्ति दी घुसीं झुनिया के पिता ने हाथ जोड़े। थोड़ी ही देर बाद खोखले तने की तरह सूखी एक मरगिल्ली स्त्री भीतर आई और उस पुरुष के पार्श्व में सहमी-सी सिमटी बैठ गई। हवा में कड़वे तेल और पसीने की मिली-जुली गंध फैल गई।

"अपनी भेदती तिरछी आँखों से तृप्ति दी ने दोनों का ऊपर से नीचे तक मुआयना किया। उनकी बदहवासी और घबराहट देख तृप्ति दी तृप्त हुईं और फिर कड़कती आवाज में गरजीं - 'बेटियाँ हैं या शैतान की औलाद! क्या खाकर पैदा किया था? दुर्गा-दुर्गा, हमारे तो स्टाफ की जान ही चली जाती... आपनि एक्खुन ही निये जान... दरकार नहीं बाबा! (आप अभी तुरंत ले जाइए इन्हें... हमें जरूरत नहीं इनकी) माँगो कि, दुस्साहस! (बाप रे! कितना दुस्साहस)।'

"दोनों के चेहरों पर काली रात का अँधेरा पसर गया। आखिर उस पुरुष ने हिम्मत कर हाथ जोड़ते हुए मुँह खोला, 'माई-बाप बस एक बार दया करें। इन लड़कियों का उतना दोष नहीं, हम लोगन ने ही उन्हें समझाया था कि किसी भी अनजान आदमी के साथ मत निकलना, वे बच्चा-चोर होते हैं, बच्चों को मार डालते हैं...' बोलते-बोलते वह अपनी उठंग धोती के छोर से माथे पर उग आए पसीने को पोंछने लगा। सामने से टूटा हुआ दाँत और चेहरे का पिलपिलापन उसे अजीब ढंग से दयनीय बना रहा था, इस कदर कि तृप्ति दी कड़की भूल ढीली पड़ीं। आँखों में नमी उभरी। अपनी हिंदी-बांग्ला मिश्रित भाषा में वे कहने लगीं - 'ठीक है, एक बार माफ किया... पर आगे से उन्होंने ऐसी हरकत की तो कान धरे बाहिर कोरे दिबी (कान पकड़ बाहर कर दूँगी)।'

"किस्सा कोताह यह कि मंगला और झुनिया का पिता रंग-मिस्त्री था और माँ सब्जी बेचती थी। दोनों बच्चियाँ घर में अकेली रहती थीं, इस कारण उनके पिता ने उन्हें समझाया था कि वे किसी भी अनजान स्त्री-पुरुष के साथ न हो लें। इस बीच पाड़े (मुहल्ले) के किसी व्यक्ति ने रंग-मिस्त्री को सिनी आशा के बारे में बताया। सिनी आशा द्वारा उसकी दोनों बेटियों को लक्खीपुर स्थित काकदीप हॉस्टल (सियालदह से 90 किलोमीटर दूर, अर्द्ध-चैरिटेबल हॉस्टल) में भेज दिया गया। माँ-बाप भी हॉस्टल साथ गए। माँ-बाप को वापस लौटते देख दोनों फूट-फूटकर रोने लगीं तो रंग-मिस्त्री ने दोनों बेटियों के हाथ में दस-दस का एक-एक नोट थमा दिया और दोनों पति-पत्नी सियालदह लौट आए।

"आजाद परिंदे की तरह दिन-भर सड़क पर गश्त लगाने की दोनों की आदत... और हॉस्टल की नियमों वाली सख्त जिंदगी! उस पर वार्डेन की मार-पीट, डाँट-फटकार और चौबीस घंटों की झिकझिक-झिकझिक। दोनों बच्चियों को घर बुरी तरह पुकारता और उस पर हाथों में बीस रुपए की पूँजी का भोला विश्वास। एक शाम दोनों हिम्मत कर हॉस्टल से भाग खड़ी हुईं। जैसे-तैसे वे स्टेशन तक पहुँचीं, पर स्टेशन पर भीड़-भाड़ और ट्रेनों की कतार देख रोने लगीं।

"बच्चियों को रोते देख किसी ने उन्हें थाने तक पहुँचा दिया। थाने वालों ने बच्चियों से पूछताछ की। उन्हें सिनी आशा की हॉट लाइन की जानकारी थी। पिछले बीस वर्षों में सिनी आशा ने अच्छा-खासा नेटवर्क तैयार कर लिया था। ओ.सी. ने नंबर घुमाया-1098 और झुनिया और मंगला के बारे में जानकारी दी। सिनी आशा वालों ने लड़कियों को थाने में ही रुकवाकर रखा और अपनी एक महिला स्टाफ को भेज दिया उन्हें लाने के लिए। महिला कार्यकर्ता दोनों लड़कियों को लेकर ट्रेन में बैठी। जैसे ही ट्रेन छूटी दोनों लड़कियाँ भयभीत हो गला फाड़ने लगीं - 'हम इन मैडम को नहीं जानते, पता नहीं ये हमें कहाँ ले जाएँगी। ये हमें बदमाशों को बेच देंगी।' ट्रेन यात्रियों ने भी अपना 'यात्री-धर्म' निभाते हुए 'बच्चा-चोर', 'बच्चा-चोर' का हल्ला मचाया और देखते-देखते महिला की जूते-चप्पलों और घूँसों से ठुकाई होने लगी। उत्तेजित और विचार-शून्य भीड़ से महिला ने हाथ जोड़कर विनती की, 'मुझे थाने ले चलिए। सच्चाई का पता चल जाएगा।'

"'थाने-वाने में कुछ नहीं होता, वहाँ तो कुर्सी पर चोर-डकैतों की माँएँ बैठी हैं। जो होना है यहीं हो जाए, फेंक दो साली को चलती ट्रेन से।'

"पर उसी भीड़ में एक-दो का विवेक भी उनके साथ था। उन्हें लगा, महिला निर्दोष है। उन्होंने किसी प्रकार बीच-बचाव करते हुए महिला को थाने तक जिंदा रखा।

"घटना का बखान करते-करते तृप्ति दी फिर अपने मूल एजेंडे पर आ गईं और मुझसे कहने लगीं - 'श्यामली, तुम इन सब बच्चों की केस हिस्ट्री लिखो। कुछ की तो लगभग तैयार है, बस तुम्हें उन्हें फिर से टाइप करवाकर फाइल करनी है। पर कुछेक की केस हिस्ट्री आधी परती है। तुम्हें उनकी फाइल पूरी करनी है। पर इन बच्चों में सबसे टेढ़ी लकीर है पिंकी। बाप रे! साल-भर हो गया उसे यहाँ आए, पर उसकी फाइल अभी तक आगे नहीं बढ़ी। अरे, पलक झपकने जितना आसान नहीं है उसकी फाइल तैयार करना।'

"'पिंकी? पिंकी कौन? वही घुँघरूवाली?'

"तृप्ति दी हँस पड़ीं। आँखों में मद झलका, 'हाँ, हाँ शेई, घुँघरूवाली (हाँ, हाँ, वही घुँघरूवाली)।'

"ध्यान आया, जब पहली बार पिंकी के दीदार हुए तो उसके पाँवों में घुँघरू बँधे हुए थे। नृत्य और संगीत जैसे उसकी रगों में था। दिन में एक बार वह नृत्य अवश्य करती थी और तब पूरा सिनी आशा उसकी रुनझुन की मादक-मादक झंकार से गूँज उठता था। यहाँ के फुटपाथी बच्चों के बीच किसी दूसरे सौरमंडल की नक्षत्र-सी अलग से झिलमिलाती थी वह। हरेक हृदय में यौवन और सौंदर्य के स्वप्न जगाती वह जिधर से भी गुजरती, दिलचस्प आँखें उठ जाती थीं उसकी ओर।

"वह मूक-मौन, पर चेहरा बोलता हुआ।

"थोड़ी देर बाद ही किसी भारी-भरकम बोरी की तरह लुढ़कते-ठुमकते तृप्ति दी फिर मेरे पास आईं और गुलाबी रंग की एक फ्लैट फाइल पकड़ाते हुए मुझसे बोलीं, 'लो पढ़ लो इसे, पिंकी के बारे में हम लोगों ने जो कुछ भी जाना है, वाया दिस फाइल।'

"वे फिर फुसफुसाईं - 'यह लड़की अपने कूल-किनारे छूने तक नहीं देती, बहुत सावधानी से बात करना इससे। भई, सभी अपने हगे-मूते पर मिट्टी डालते हैं, पिंकी भी क्या करे। इसकी माँ सोनागाछी में रहती है। अरे, माँ क्या माँ के नाम पर कलंक है। खुद रंडी बनी और पिंकी को भी उसी नरक में घसीटा। पिंकी की फाइल में स्पष्ट लिखा है कि 11 वर्ष से 14 वर्ष की उम्र तक उसके साथ कई बार बलात्कार हुआ और वह भी उसकी माँ के ग्राहकों द्वारा ही। सबसे पहले वह 'ऑल बंगाल चिल्ड्रेन वेलफेयर होम' में थी। वहाँ पर उसकी किसी सहेली को पिंकी की माँ के बारे में पता चल गया था। एक दिन उसने पिंकी से पूछ डाला, 'तोर माँ की वेश्या छीलो?' (तुम्हारी माँ क्या वेश्या थी?)। बस, पिंकी के चोले को फाड़कर एक नई पिंकी निकली और गुस्से में उस लड़की का सिर दीवाल से भिड़ा दिया। इस घटना के बाद उसकी फाइल में लिख दिया गया - मेंटल केस, और उसी आधार पर उसे अंताराग्राम मेंटल हॉस्पिटल में भेज दिया गया। वहाँ उसे विक्षिप्तों और मंदबुद्धियों के साथ रखा जाता। पर पिंकी मानसिक रोगी तो थी नहीं। फिर भी कुछ दिनों तक खामोशी ओढ़े रखी उसने, पर जब स्थिति नाकाबिले बर्दाश्त हो गई तो उसने चेक करने आए डॉक्टर से कहा, 'मुझे नहीं रहना इन पागलों के बीच। दिन-भर ये लोग लड़ती-झगड़ती हैं और मेरे बिस्तर-कपड़ों पर थूक देती हैं...।'

"एक-ए क शिफ्ट में दर्जनों विक्षिप्तों को निपटानेवाले डॉक्टर की सारी संवेदनाएँ सूख चुकी थीं। उसके सिर्फ दो ही काम थे, हर महीने वेतन का चेक उठाना और पागलों को नियंत्रित रखना... इस कारण जब-जब पिंकी कहती, वह उसे डपट देता, 'बेशी कोथा कोरले चेने बेंदे दिवो।' (अधिक बक-झक किया तो चेन से बाँध दूँगा।) एक बार गुस्से में आकर पिंकी ने डॉक्टर का हाथ काट लिया। उस दिन उसे दिन-भर कुत्ते की तरह चेन से बाँधकर रखा गया।

"फिर किसी चमत्कार की तरह जाने किस बुद्धिमान और सहृदय साईकियास्ट्रिस्ट की मेहरबानी से उसे हमारे यहाँ भेज दिया गया।

"मैं अवाक्। यह जानकारी की नई परत थी और अभी जाने कितनी परतें और खुलने वाली थीं। एकाएक मैंने पूछा, 'आपने क्या कभी उसमें कोई पागलपन का लक्षण देखा?'

"अपने दाएँ हाथ के पंजे निकाल-निकालकर तृप्ति दी ने कहा, 'अरे नहीं, वह तो खुद मानसिक रोगियों को ठीक कर दे। उसका नृत्य, उसका सेवा-भाव, उसका व्यवहार देख सभी निहाल हैं यहाँ। बस जरा-सी प्रॉब्लम चाइल्ड है... विशेषकर यदि कोई उसके अतीत को छूना भी चाहे तो काटने दौड़ती है। माँ का तो नाम तक सुनना नहीं चाहती... इसीलिए उसकी फाइल अभी तक अधूरी पड़ी है। इस संस्था का नियम है, जितने बच्चे उतनी फाइलें।' वे फिर मेरी ओर आशा-भरी निगाहों से देखने लगीं, 'तूमि पारबी तो' (तुम कर सकोगी तो)।

"मैंने आत्मविश्वास से सिर हिलाया, 'अरे, इतने उग्रवादियों का, नक्सलवादियों का, साधुओं का, तवायफों का, इंटरव्यू लिया तो यह किस खेत की मूली?'

"वे आश्वस्त हुईं, 'खूब भालो' (बहुत अच्छा)। और ग्रहों की अँगूठी वाली अपनी उँगलियों से मेरे गाल को हलके से थपथपाया।

"उस दिन अपने विलक्षण रूप में थी पिंकी।

"समय और सृष्टि के बाहर खड़ी प्रेम-पुजारिन मीरा की तरह नाच रही थी वह। सिनी आशा में वार्षिकोत्सव की तैयारियाँ चल रही थीं। मैं भी फाइलों को परे खिसकाकर नृत्य देखने पहुँच गई।

"ऐसा स्वाभिमानी सौंदर्य! ओस-बूँद की तरह शीतल और अग्नि की तरह दहकती हुई। लगा, जैसे कोणार्क के सूर्य-मंदिर की दीवारों पर उत्कीर्ण कोई रूपसी जमीन पर उतर आई है। उसके प्रभामंडल से चौंधियाए पास ही हैप्पी होम और सिक विंग के कई बच्चे बुखार में भी आकर खड़े हो गए। मस्त मोरनी की तरह अपने मन के मधुबन में नाच-नाचकर पूरे वातावरण को मीरामय बनाने के बाद जब वह थककर बैठ गई तो जाने किस ईर्ष्यालु लड़की ने गुस्ताखी से पूछ डाला, 'बिना नृत्य स्कूल में दाखिला लिए इतना भव्य नृत्य तो तुमने अपनी माँ से सीखा होगा...' बस, देखते ही देखते उल्लास, सौंदर्य और उमंग की वह देवी जंगली बिल्ली बन चीं-चीं करने लगी। स्वेद-कण से चमकता उसका चेहरा गोबर के अधजले उपले की तरह बदरंग हो गया। उसकी गुलाबी आँखों से चिनगारियाँ फूटने लगीं। वह अपनी सहेली पर टूट पड़ी और उसका बायाँ हाथ इतनी जोर से मरोड़ा कि यदि पास में ही बैठी गिटारवादिका ने उसे नहीं छुड़ा लिया होता तो हड्डी ही टूट जाती उसकी।

"इस घटना के बाद पिंकी फिर सिकुड़ती गई। खामोशी उसके भीतर फैल गई। आहिस्ता-आहिस्ता।

"उसे फिर मानसिक अस्पताल में भेजने की बात होने लगी।

"तृप्ति दी के घोड़ा-छाप लंबोतरे चेहरे पर विषाद की हलकी परत फैल गई। उन्होंने फिर मुझे आगाह किया, 'अभी तक आपने पिंकी की फाइल पर काम करना शुरू नहीं किया... यह तो है हाल पिंकी का... कभी भी उसे मेंटल हॉस्पिटल में भेजा जा सकता है। नहीं, यदि दूसरे बच्चों को उससे खतरा हो तो उसे कैसे रखा जा सकता है?'

"कुछ दिनों बाद ही दुर्गापूजा आ गई। कोलकाता का सबसे बड़ा जातीय त्यौहार। पूरे चार दिनों तक दुल्हन की तरह सजा-धजा कोलकाता और रोशनी की झालरों से झिलमिल-झिलमिल करते यहाँ के पंडाल। कोई पंडाल ताजमहल की अनुकृति तो कहीं दिल्ली का संसद भवन तो कहीं हाईकोर्ट तो कहीं जयपुर का हवामहल। पूजा की वह धूम कि जिसने पूजा नहीं देखी वह अजन्मा। कोलकाता ही नहीं, आसपास के गाँवों-कस्बों से भी लोग बहते हुए चले आते यहाँ, जिंदगी का स्वाद लूटने के लिए।

"हमारी सिनी आशा के भी अधिकांश बच्चे घर चले गए थे, अपने परिवार के साथ पूजा मनाने। घने पेड़ों के झुरमुटों के बीच इक्के-दुक्के ठूँठ की तरह गिने-चुने वे ही बच्चे रह गए थे जो या तो बेहद बीमार थे या जिन्होंने दुनिया में अपने लिए बहुत ही कम जगह घेरी थी। ऐसे बे-ठौर-ठिकानों वाले बच्चों को सँभालना बहुत जानलेवा होता था, क्योंकि सावन की घटाओं की तरह हर पल इनके भीतर अपने उजड़े घर की धुँधली यादें उमड़ती-घुमड़ती रहतीं। ये छुट्टियाँ उन्हें खुशनसीबों से अलग कर लहर दर लहर इनकी उदासी बढ़ाती जातीं। सिनी आशा के बरामदे में खड़े ये बच्चे पथरीली आँखों से अपने हमउम्र बच्चों को अपने माँ-बाप और भाई-बहनों के साथ जश्न मनाते देखते और लहूलुहान होते रहते थे। हम चाहकर भी उन दिनों उनके चेहरों पर हँसी नहीं उगा पाते थे।

"जिंदगी के जाने कितने रहस्यों को अपने भीतर समेटे पिंकी भी अपनी वीरान आँखें और गमगीन चेहरा लिए बरामदे में खड़ी थी।

"मैंने पीछे से उसके कंधों पर हाथ रखा। वह चिहुँकी।

"'ओह, आंटी!'

"'चलो, पूजा दिखा लाती हूँ।'

"'पूजा?' क्षण-भर के लिए उसकी आँखें चमकीं, पर अगले ही क्षण उनमें सयानापन भर आया।

"'नहीं आंटी, आज मैं खाली नहीं हूँ...।' उसने किसी बेहद व्यस्त गृहस्थिन के अंदाज में कहा।

"'तुम्हें क्या काम है?'

"उसने उँगली 'सिक विंग' की ओर उठाई, जहाँ कोई नया परिंदा जगह घेर रहा था। भोला। सिनी आशा के फील्ड वर्कर उसे सियालदह स्टेशन के प्लेटफॉर्म नंबर पाँच से उठा लाए थे। उसके घुटने फूले हुए थे। वह दर्द के मारे ऐंठ रहा था। वह पत्ताखोर (नशेबाज) था। उसके पिता वैन चलाते थे। सियालदाह स्टेशन के पास ही पुल के नीचे उसकी खोलाबाड़ी थी, जहाँ उसकी माँ पाँच-पाँच रुपयों में पत्ताखोरों को नशे के सेवन के लिए खोलाबाड़ी किराए पर देती थी। भोला पत्ताखोर को पन्नी, ब्लेड, मोमबत्ती, दियासलाई पकड़ाते-पकड़ाते स्वयं कब नशे की टान मारने लगा, उसे भी पता नहीं चला। देखते-देखते यह लत बन गई। पत्ता (नशे की एक डोज) नहीं मिलता तो वह नशे की तलब मिटाने के लिए डेनड्राइट का सॉल्युशन ही खाने लगा।

"'ओ माँ, माँगो,' भोला दर्द से ऐंठ रहा था। पिंकी उसे प्यार से डाँट पिला रही थी, 'और टान पत्ता, कर टपोरीगिरी।' (और कर नशा और कर टपोरीगिरी)।

"पिंकी ने हाथ के सहारे से उसे उठाया और उसे पेन-किलर दी और फिर उसे सुलाते हुए डाँट पिलाई, 'चोक मूँदे सुए थाक।' (आँख बंद कर पड़ा रह।)

"'तो तुम कब चलोगी?'

"'जब तक इसका दर्द कम नहीं हो जाता।'

"चीं-चीं कर दरवाजा बंद हुआ और मैं झल्लाती हुई बाहर।

"तीसरे दिन भोला को आराम मिल गया था और पेन-किलर के प्रभाव से वह जमकर सो रहा था। उसके सिरहाने बैठी थी पिंकी - उदास और अवसन्न। आँखों से टपकते टप-टप आँसू, जैसे महाकाल के कपोल पर लुढ़कती कुछ बूँदें।

"मुझे देखते ही वह फफक पड़ी - 'आप मुझे पूजा दिखाने के लिए ले चलने वाली थीं न। मुझे पूजा नहीं देखनी। मुझे अपनी ठाकुर माँ से मिलना है। वे बहुत बूढ़ी हैं। मुझसे मिलने नहीं आ सकतीं। आप मुझे मेरी ठाकुर माँ के पास ले चलिए... मुझे मिलना है उनसे। उन्हें देखे चौदह महीने हो गए। जाने किस हाल में होंगी वे!'

"पिंकी के दिल में अपनी ठाकुर माँ की यादों का इकतारा बज रहा था। पर मैं उसे कैसे समझाती कि तृप्ति दी ने मुझे पिंकी को ठाकुर माँ के पास भी ले जाने को मना किया है। उसकी ठाकुर माँ के घर के पास ही उसकी माँ का भी घर है। उसकी माँ को भनक पड़ते ही वह पिंकी को लेने वहाँ आ सकती थी। तृप्ति दी की चेतावनी मेरे कानों में गूँज रही थी - 'आप नहीं जानतीं उसकी माँ को, किसी भी प्रकार बहला-फुसलाकर वह वापस पिंकी को उसी गंदगी में धकेल सकती है। आप नहीं जानतीं उसकी माँ को। यदि सप्ताह-भर भी पिंकी रह जाए अपनी माँ के साथ, तो उसी की भाषा बोलने लगेगी। यहाँ आई थी पिंकी तो बड़ी गंदी जुबान और आदतें थीं उसकी। बिना... सड़ी और मादर के बात ही नहीं करती थी। और कमीज तो इतने खुले गले की पहनती थी कि आधा माल बाहर से ही दिखे। हमने उसे सरस्वती वंदना सिखाई। उसे अच्छे भावों के नृत्य सिखाए।'

"पिंकी लगातार झँझोड़ रही थी मुझे, 'आंटी मुझे ले चलिए अपनी ठाकुर माँ के यहाँ।' एकाएक मुझे एक उपाय सूझा। मैंने सोचा कि कुछ ऐसा किया जाए कि पिंकी भी खुश हो जाए और मुझे भी इस खूबसूरत शाम की कुछ मलाई हाथ लगे।

"मैंने पिंकी से कहा, 'पिंकी, नहीं मामा थेके काना मामा भालो (बिना मामा से काना मामा अच्छा)। मैं ऐसा करती हूँ कि टैक्सी में तुम्हारी ठाकुर माँ को ही लेकर यहाँ आ जाती हूँ, क्योंकि मुझे तुम्हें वहाँ ले जाने की इजाजत नहीं है। तुमसे मिलवाकर मैं तुम्हारी ठाकुर माँ को वापस वहाँ छोड़ आऊँगी। पर इसके बदले तुम्हें भी मेरा एक काम करना होगा।'

"'हाँ, हाँ, क्यों नहीं? बोलिए, मुझे क्या करना होगा?'

"मैंने कहा, 'पिंकी, मैं जो कुछ भी तुमसे पूछूँ, तुम्हें उसका जवाब देना होगा... देखो, मुझे तुम्हारी फाइल तैयार करनी है। तुम्हारी पूरी केस हिस्ट्री... ई... '

"मैं बात पूरी कर भी नहीं पाई थी कि उसकी आवाज अकस्मात रामपुरी चाकू की तरह धारदार हो गई, 'क्या फाइल?' और देखते-देखते लोकगीत-सी लुभावनी पिंकी शोक-गीत में बदल गई।

"मैंने हिम्मत कर कहा, 'तुम्हारी भलाई के लिए ही तो तैयार की जा रही है यह फाइल।'

"वह धम्म से बैठ गई, जैसे कोई बुलंद इमारत ढह गई हो। जाहिर था, जिंदगी से लड़ते-लड़ते वह जैसे थक गई थी।

"उसे ढहते देख मेरी हिम्मत इंच-भर और बढ़ी। मैंने फिर उसे कुरेदा, 'देखो, माँ के प्रति तुम्हारी नफरत तो समझ में आती है, पर इन फाइलों ने क्या बिगाड़ा है तुम्हारा?'

"मेरी बात सुन रेत पर पड़ी सोन मछली-सी वह तड़पी। सुरमा-सजी उसकी आँखें मिचमिचाईं। एक दीर्घ निश्वास छोड़ते हुए उसने कहा, 'अब कैसे समझाऊँ आपको कि जितना मेरा नुकसान मेरी माँ ने किया उससे ज्यादा फाइलों के इन खुले जबड़ों ने किया है। निगल ली हैं इन्होंने मेरी सारी खुशियाँ। इज्जत की डाल पर झूलते आप लोग क्या कभी सोच भी सकते हैं यह सत्य कि 11 से 14 वर्ष तक मेरा कई बार बलात्कार हुआ जब तक इन फाइलों में दर्ज रहेगा, समझ लीजिए, यह मेरे माथे पर दर्ज रहेगा। जो मेरे साथ हुआ उसके लिए मैं दोषी नहीं, यह सोच मैं अपने अतीत को भूल जिंदगी में रुचि लेने लगी थी। एक लड़के से प्रेम भी करने लगी थी। वह सचमुच मेरी जिंदगी का उजाला था। उसे देख मैंने पहली बार महसूसा कि आदमी जीना तभी सीखता है जब किसी से प्यार करता है। वह भी मुझे बेइंतहा चाहने लगा था। मैंने उसे बताया कि मेरी माँ सोनागाछी में रहती अवश्य है, पर वह बुरा काम नहीं करती... वह आसपास के घरों में खाना पकाती है। मेरी ठाकुर माँ (दादी) बहुत बूढ़ी हैं, इस कारण माँ ने मुझे सिनी आशा में रख रखा है। वह मुझे प्यार भी करता रहा, पर भीतर ही भीतर मेरे बारे में खोज-खबर भी करता रहा। एक दिन मेरी अनुपस्थिति में उसने ऑफिस के क्लर्क को घूस-वूस देकर पटा लिया और मेरी फाइल पढ़ डाली। उसके बाद से उसने मुझसे मिलना छोड़ दिया। कई दिन की छटपटाहट के बाद एक बार मैं उसके घर पहुँची तो उसने मुझे बाहर से ही चलता किया। मैंने जब इस बेरुखी का कारण पूछा तो उसने मुझे ऐसी नजर से देखा जैसे मैं कितनी गंदी और घिनौनी जानवर हूँ। उसका शब्द-शब्द मेरी आत्मा को दाग गया। उसने मुझसे कहा, 'मैंने तुम पर कितना विश्वास किया... पर तुम... रंडी की बेटी रंडी ही निकली।' उसके बाद वह मुझे फिर कभी नहीं मिला। मेरे जीवन में काली रात का अँधेरा भर वह सदा के लिए चला गया।'

"भीगे कबूतर की तरह मैं बैठी रही। मूक-मौन। कनखियों से देखा मैंने, बूँद-बूँद उदासी पिंकी के चेहरे से टपकते हुए अनंत में डूबती जा रही थी। लगा, जैसे यह पिंकी नहीं, कोई आदिम शकुंतला थी। फर्क बस इतना ही कि वह अपनी अँगूठी और यह अपनी फाइल वापस माँग रही थी मुझसे।

"पिंकी से बिना कुछ कहे मैं वहाँ से खिसक गई। धीरे-धीरे और बेआवाज पतझड़ के सूखे पत्ते की तरह।

"पूजा की छुट्टियाँ अभी चल ही रही थीं।

"दूसरे दिन मैं फिर पिंकी के पास। पर आज मुझे देख उसमें कुछ भी नहीं जागा। उसके भीतर की बुलबुल मर गई थी। वह वैसे ही बैठी रही। खामोश, अडोल। मैंने फिर उसके कंधे पर हाथ रखा और उसे उत्तेजित करने को कहा, 'मैंने तो तुम्हें होशियार समझा था, पर तुम तो मूर्ख निकलीं। महामूर्ख।'

"वह सचमुच भड़क उठी, जैसे वामपंथी कांग्रेस की आर्थिक नीतियों से भड़क उठते हैं।

"'क्या... क्या मतलब?'

"'यह देखो तुम्हारी फाइल... बताओ, कहाँ लिखा है इसमें तुम्हारे या तुम्हारी माँ के बारे में?'

"क्षण-भर के लिए पिंकी सोच में पड़ गई... पर दूसरे ही पल उसने फिर पलटवार किया, 'यदि इसमें नहीं लिखा होता तो समीर, हाँ, वही लड़का, को मेरी माँ के नाम, मेरे पाड़े (मुहल्ले) के नाम का पता कैसे चलता? उसे यह भी पता कैसे चलता कि 11 वर्ष से 14 वर्ष के बीच... '

"'बताओ, कहाँ लिखा है?' मैंने फिर उसे कुरेदा।

"पिंकी ने फाइल उलटाई और एक जगह उँगली दिखाई, बैक ग्राउंड हिस्ट्री... 'देखिए आंटी, यहीं कहीं लिखा होगा... उतनी अंग्रेजी मुझे नहीं आती।'

"'कहाँ...' और देखते-देखते मेरे फाउंटेन पेन की स्याही ने उसकी पूरी बैक ग्राउंड हिस्ट्री को काली स्याही में बदल दिया।

"पिंकी भौचक्की! 'यह क्या किया आंटी?'

" 'कुछ नहीं। जिंदगी की जंग ऐसे भी लड़ी जाती है। यह भी एक दुर्घटना थी। ठीक वैसे ही जैसे तुम्हारे साथ हुई थी। अब तुम्हीं बताओ... दुर्घटनाओं के लिए कोई भी दोषी हो सकता है क्या?'

"'पर तृप्ति दी को आप क्या जवाब देंगी?' पिंकी मेरी चिंता में फूँ-फा करने लगी थी।

"मन ही मन मैं अपनी पीठ थपथपा रही थी। भले ही तृप्ति दी के समक्ष मैं लाजवाब हो जाऊँ... पर इतिहास ने मेरे सिरहाने खड़े होकर कभी यदि पूछा कि तुमने क्या किया? तो मैं उसे कुछ जवाब दे पाऊँगी। पर प्रत्यक्षतः यही कहा, 'जवाब क्या देना है, फाइलों का यह देश, यहाँ फाइलें सिर्फ तैयार की जाती हैं, पढ़ी कहाँ जाती हैं। पहले भी तीन बच्चों की फाइल निपटा चुकी हूँ, उन्होंने पलटकर भी नहीं देखा। मैंने कह दिया... पूरी हो गई और फाइल को रैक में लगा दिया... तुम्हारे साथ भी वैसा ही होगा।'"

बतलाते-बतलाते श्यामली दी का चेहरा भोर की किरणों-सा जगमगा उठा था... भाव-विभोर हो वे बोलीं, "...वह एक अतींद्रिय अनुभव था। लगा, जैसे मैंने धरती के एक घिनौने धब्बे को साफ कर दिया है। और पिंकी... वह तो जैसे सेमल के फूल की तरह हलकी हो आसमान में उड़ रही थी।"

हम सब उठ गए थे, पर श्यामली दी के मन का पर्दा अब भी उन्हीं चित्रों से भरा हुआ था।

कथानक –

‘बड़े घर की बेटी’ एक संयुक्त परिवार की कहानी है । ठाकुर बेनीमाधव सिंह गौरीपुर गाँव के ज़मींदार थे। उनके पितामह किसी समय बड़े धन- धान्य से सम्पन्न थे । पर बेनीमाधव सिंह अपनी आधी से अधिक सम्पत्ति वकीलों को भेंट कर चुके थे। उनकी वर्त्तमान आय एक हज़ार रुपए वार्षिक से अधिक न थी। ठाकुर साहब के दो बेटे थे। बड़े का नाम श्रीकंठ सिंह था । वह बहुत परिश्रमी था। उसने बी०ए० की डिग्री प्राप्त की थी, पर पढ़ाई ने शरीर को निर्बल और चेहरे को कांतिहीन बना दिया था। छोटा लड़का लालबिहारी सिंह दोहरे बदन का सजीला जवान था। भैंस का दो सैर ताज़ा दूध वह सवेरे उठकर पी जाता था। पढ़े-लिखे होने के पश्चात् भी श्रीकंठ पाश्चात्य सामाजिक प्रथाओं के विशेष प्रेमी न थे। वह संयुक्त परिवार के प्रेमी थे बड़े उत्साह से रामलीला में सम्मिलित होते और स्वयं किसी न किसी पात्र का अभिनय करते थे। स्त्रियों को कुटुम्ब में मिल-जुलकर रहने की जो अरुचि होती है, उसे वह देश और जाति दोनों के लिए हानिकारक समझते थे ।

यही कारण था कि गाँव की ललनाएँ इनकी निंदक धीं। यहाँ तक कि स्वयं इनकी पत्नी का इस विषय में उनसे विरोध था। श्रीकंठ की पत्नी आनंदी भूपसिंह नामक एक रियासत के ताल्लुकेदार की रूपवती, गुणवती व प्रिय कन्या थी। श्रीकंठ भूपसिंह के पास चंदा माँगने गए थे उन्हें देखकर, प्रभावित होकर, भूपसिंह ने अपनी वेटी आनन्दी की शादी उनसे कर दी थी।जिस टीम-टाम की आनंदी को बचपन से ही आदत थी, वह यहाँ नाम-मात्र को भी न थी। यह एक सीधा-सादा देहाती गृहस्थ का मकान था, किन्तु आनन्दी ने थोड़े दिनों में ही अपने को नई परिस्थिति के अनुकूल बना लिया था।एक दिन लालबिहारी सिंह दो चिड़ियाँ लाए और अपनी भाभी आनंदी से पकाने के लिए कहा। आनंदी ने नया व्यंजन बनाने में पाव भर घी डाल दिया। दाल के लिए बिल्कुल भी घी न बचा। लालबिहारी सिंह खाने बैठा तो दाल में घी न देखकर भाभी से घी की माँग की। परन्तु भाभी ने कहा कि मैंने सारा घी मांस पकाने में ही डाल दिया है। लालबिहारी को बहुत गुस्सा आया। तुनककर बोला- 'मैके में तो जैसे घी की नदी बहती हों।' परन्तु आनंदी मैके का व्यंग्य सहन न कर सकी। उसने कहा-'वहाँ तो इतना घी नित्य नाई-कहार खा जाते हैं।बस इसी बात पर भाभी देवर में कहासुनी हो गई।

लालबिहारी ने खड़ाऊँ उठाकर आनंदी की ओर ज़ोर से फेंकी। आनंदी ने हाथ से खड़ाऊँ रोकी। सिर बच गया, पर उँगली में काफ़ी चोट आई।स्त्री का बल, साहस, मान और मर्यादा पति तक है। अत: आनंदी ख़ून का घूँट पीकर रह गई।श्रीकंठ शनिवार को घर आया करते थे। बृहस्पतिवार को यह घटना घटी थी। दो दिन तक आनंदी कोपभवन में रही थी। न कुछ खाया न कुछ पिया, बस श्रीकंठ की बाट देखती रही।अंत में शनिवार को श्रीकंठ घर आए। बाहर बैठकर इधर-उधर की बातें होती रहीं। श्रीकंठ के घर आने पर लालबिहारी ने भाभी की शिकायत की। पिता ने भी उसका साथ दिया। परंतु बाद में पूरी बात जानने पर जब श्रीकंठ ने कहा कि इस घर में या तो वह रहेगा, या लालबिहारी। तो लालबिहारी रोते हुए भाभी से माफ़ी माँगता है। भाभी ठहरी बड़े घर की बेटी। उसके संस्कार ऐसे थे कि न केवल उसने लालबिहारी को माफ़ किया अपितु उसे माफ़ करने के लिए पति को भी प्रेरित किया। टूटता घर जुड़ गया। पिता भी आनन्द से पुलकित हो गए और कह उठे कि बड़े घर की बेटियाँ ऐसी ही होती हैं जो बिगडता हुआ काम बना दें। इस प्रकार जो झगड़ा उसके मायके के धन-उस घर- के संस्कारों के कारण हुआ। उन संस्कारों में दूसरों की भावनाओं की कद्र करना, दोषों को क्षमा करना तथा मिलजुल कर रहने की भावना थी। इस तरह बड़े घर के संस्कारों की पहचान व्यक्ति के गुणों से होती है न कि उसके धन से।

उद्देश्य – कहानी का मुख्य उद्देश्य आदर्शोन्मुख यथार्थवाद का प्रस्तुतीकरण रहा है । 'बड़े घर की बेटी' की कहानी एक संयुक्त परिवार की कहानी है । बेनीमाधव सिंह गौरीपुर गाँव के ज़मींदार हैं जिन्होंने मुकदमेबाज़ी में अपनी आधी से ज़्यादा सम्पत्ति गँवा दी थी। उनके बड़े पुत्र श्रीकंठ शहर में नौकरी करते हैं लेकिन छोटा बेटा अनपढ़ और गँवार है परंतु अपने भाई से विशेष प्रेम करता है। श्रीकंठ की पत्नी आनंदी एक बड़े घर की बेटी है। दाल में घी को लेकर भाभी देवर में झगड़ा होता है और अन्त देवर द्वारा खड़ाऊँ फेंकने पर होता है। आनंदी अनुभव करती है कि यदि उसके पति वहाँ होते तो उसे इस तरह देवर से अपमानित न होना पड़ता। श्रीकंठ के आने पर पिता पुत्र उससे उसकी पत्नी की शिकायत करते हैं पर जब अँगुली की चोट को देखकर श्रीकंठ सच्चाई जानते हैं तो वे अलग होने की बात करते हैं।पिता पुत्र में जमकर झगड़ा होता है। यहाँ अपनी खिचड़ी अलग पकाना ही अच्छा है। श्रीकंठ आगबबूला हो गए थे। वह भाई का मुँह भी देखना नहीं चाहते थे। जो कार्य लालबिहारी ने लड़कपन एवं मूर्खता में किया था उसकी इतनी बड़ी सज़ा भुगतनी पड़ेगी, यह उसने सोचा भी नहीं था। वह रो रहा था और भाभी से अपने अपराध के लिए क्षमा माँग रहा था। वह घर छोड़ कर जा रहा था। यदि सुबह का भूला साँझ को घर आ जाए तो उसे भूला नहीं कहते। यहाँ लेखक का उद्देश्य उसे अपनी से परिचित कराना है न कि सज़ा देना। लालबिहारी सिंह अपने बड़े भाई से प्रेम करता है और उनका सम्मान भी करता है। भाभी ने पति को समझाया और उसे रोकने के लिए कहा। दोनों भाई गले मिले और इस तरह टूटता परिवार फिर जुड़ गया। पिता को भी अहसास हुआ कि वास्तव में बड़े घर की बेटियाँ बिगड़ते कार्य को भी बना देती हैं। इस प्रकार लेखक का उद्देश्य मनोवैज्ञानिक चित्रण के द्वारा एक आदर्श उपस्थित करना है जो यथार्थ की गलियों से होकर जाता है। यह एक चरित्र-प्रधान कहानी है जिसमें बड़े घर की संज्ञा बहू को उसके गुणों के कारण मिलती है, न कि धन के कारण। ऊँचे कुल का महत्त्व दर्शाना भी लेखक का उद्देश्य रहा है।

चरित्र – चित्रण –

बेनीमाधव सिंह – बेनीमाधव सिंह गौरीपुर गाँव के ज़मींदार व नम्बरदार थे। वे एक आदर्श पिता व समझदार व्यक्ति थे परन्तु स्त्रियों से अधिक पुरुषों को श्रेष्ठ समझते थे तभी लालबिहारी द्वारा बड़े भाई से भाभी की शिकायत करने पर इन्होंने भी बेटे का ही समर्थन किया था। संयुक्त परिवार के पोषक थे। किसी की प्रशंसा करने में भी चूकते नहीं थे। जिस बहू के दुर्व्यवहार की शिकायत बेटे से की थी, उसी बहू के द्वारा पुन: दोनों भाइयों के मिलाप को देखकर वे उसकी प्रशंसा करने से भी अपने को रोक न सके और खुश होकर वोले-'बड़े घर की बेटियाँ ऐसी ही होती हैं। बिगड़ता काम बना लेती हैं।'

श्रीकंठ सिंह – श्रीकंठ बेनीमाधव सिंह का बड़ा पुत्र था। बी०ए० पास था। अधिक परिश्रम करने के कारण शरीर से निर्बल व कांतिहीन था। संयुक्त परिवार को मानता था। पाश्चात्य सामाजिक प्रथाओं को विशेष पसन्द नहीं करता था स्त्रियों को कुटुम्ब में साथ रहने की जो अरुचि होती है, उसे वह देश और जाति दोनी के लिए हानिकारक समझता था इसलिए स्त्रियाँ उसे नापसन्द करती थी| अपनी पत्नी से बहुत प्यार करता था तथा अपने कर्तव्य पालन के लिए प्रत्येक शनिवार को घर आ जाया करता था। समझदार भी था, अत; उसने अपनी पत्नी व भाई की नंक-झाकु की पूरी तरह से समझ कर ही पिता से बात की थी। भावुक व सहृदय था अपनी पत्नी के आँसू सहन नहीं कर सका था। साथ ही पति धर्म की मर्यादा को भी जानता व समझता था सरल व सीधा युवक था। तर्क शक्ति में पंडित था। संश्षेप् में, श्रीकंठ एक पढ़ा-लिखा, समझदार, संयुक्त परिवार को पसन्द करने वाला, सीधा-सादा, तारकिक बुद्धि वाला युवक होने के साथ-साथ एक मर्यादापालक पति भी था।

लालबिहारी सिंह – सजीला जवान, दूध पीने का शौकीन एवं हृष्ट- पुष्ट युवक था। खाने-पीने का विशेष शौकीन था।उसने क्रोध आने पर मुँह से असंगत बात तो निकाल ही दी थी, साथ ही मारने की भूल भी की थी।अत: पता चलता है कि वह अपने क्रोध पर काबू नहीं रख पाता था। बहस करने में प्रवीण था। परन्तु परिवार से बहुत ज्यादा प्यार करता था। सहृदय व भावुक भी था। अकेले रहने की व परिवार से अलग होने की बात से ही फूट-फूटकर रोने लगता था। क्षमा माँगने से कोई छोटा नहीं होता, इसका उसे ज्ञान था। उसने अपने भैय्या-भाभी से क्षमा भी माँग ली थी। उसके इसी गुण के कारण यह परिवार एक साथ रह सका था। अत: लालबिहारी एक सहृदय, स्वस्थ, क्रोधी, परिवार को प्रेम करने वाला एक भावुक युवक था।

आनंदी – कहानी की नायिका आनंदी एक सुन्दर व समझदार धनी परिवार की रूपवती व गुणवती कन्या थी। मिलनसार व हर परिस्थिति में मिल-जुल कर रहने वाली, मृदुभाषी व परिश्रमी युवती थी। अपनी ससुराल के सभी सदस्यों से प्रेम व श्रद्धा रखती थी। अपने मायके की मर्यादा को भी भली-भाँति कायम रखना जानती थी। यही कारण था कि लालबिहारी द्वारा मायके का ताना देने पर आनंदी सहन नहीं कर सकी थी। परन्तु अपने सम्मान की भी रक्षा करना जानती थी। वह यह भी भली-भाँति समझती थी कि स्त्री का बल, साहस, मान और मर्यादा पति तक है, अत: वह लालबिहारी द्वारा खड़ाऊँ फेंकने पर घायल अँगुली लिए बिना खाए-पीए तीन दिन तक कोपभवन में ही रही। पति के आने पर ही अपने मन की बात कही। पर परिवार को टूटते देख अपने दुःख को भुला कर पति के छोटे भाई को घर से दूर जाने से रोकने के लिए कहने लगी और अन्त में सफल भी हो गई।